अनुक्रमणिका

विषय-सूची पृष्ठ-संख्या

१. राधिका जन्म से ही हुआ प्रेमरस संचरित.....(०३)
२. श्रीमद्भागवत माहात्म्य कथा.....(१०)
३. श्रीकृष्ण रसामृत.....(१२)
४. श्रीमद्भगवद्गीता.....(१४)
५. समर्पण का स्वरूप.....(१६)
६. श्रीराधासुधानिधि.....(१८)
७. गोपी-गीत.....(२०)
८. नाम-महिमा.....(२२)
९. धाम-महिमा.....(२४)
१०. गौ-महिमा.....(२६)
११. "द टाइम्स ऑफ कनाडा...." .....(२८)
१२. Exclusive Faith.....(३२)

संरक्षक

श्री राधामानबिहारी लाल

प्रकाशक – राधाकान्त शास्त्री,

मान मंदिर सेवा संस्थान

गह्वर वन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)

Website :www.maanmandir.org

E-mail :ms@maanmandir.org

mob. : 9927338666, 9837679558

अरि बरसाने बजी बधाई,
कीरति नें लाली जाई ||

वन्दनवार बँधे महलन में
अरि ऊँचे पै धुजा लगाई, कीरति ने ....|
उमा रमा वाय धन्य कहैं
अरि जो बरसाने की दाई, कीरति ने ....|
हार दियौ हियरे कौ रानी
अरि वाय खपरा रतन भराई, कीरति ने ....|
भानुमति राधा की बूआ
अरि वो लेत नेग मन भाई, कीरति ने ....|
दौरी-दौरी फिरैं मलिनियां
अरि वो तो फूलन गजरे लाईं, कीरति ने ....|
दौरी-दौरी फिरैं ढांढ़िनी
अरि वंसावलि नाच सुनाई, कीरति ने ....|
जसुदा गावत चली बधाई
अरि वो तो भानुराय घर आई, कीरति ने ....|
कनक थार में नीली झँगुली
अरि वो चूरो हँसली लाई, कीरति ने ....|
चकवा चकई भौंरा भौंरी
अरि वो संग में कुँवर कन्हाई, कीरति ने ....|
धन्य कूँख कीरति मैया की
अरि जाते राधा ब्रज में आई, कीरति ने ....|
जुग-जुग जीवैं लली भानु की
अरि सब दैं असीस सुखादाई, कीरति ने ...|

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप बाबाश्री के प्रातःकालीन सत्संग का ८ से ९ बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:०० से ७:३० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं |

विशेष:- इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्-कृपा के पात्र बनें | हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है –

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ | जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि || (श्रीमद्भागवत३/७/४१)

अर्थ:- भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हो सकता |

(पत्रिका लेखन में यहाँ के संत व साध्वियों का विशेष सहयोग है पर वह त्याग के कारण नाम नहीं देना चाहते हैं)

प्रकाशकीय

सभी भक्तों (पाठकों) को झूलन-उत्सव, राधाष्टमी एवं कृष्ण-जन्माष्टमी की बधाई | प्रस्तुत पत्रिका 'राधाष्टमी-विशेषांक' है, मुझे आशा ही नहीं पूरा विश्वास है कि पाठकों को यह श्रीराधारानी के चरणों में रति बढ़ाने में एक आयाम होगा |

प्रतिक्रिया की भावना से दूर रहकर भगवत्प्रेम कोई महापुरुष ही कर सकते हैं | प्रह्लादजी को मारने का हर सम्भव प्रयास हिरण्यकशिपु ने किया परन्तु वे नहीं मरे | हिरण्यकशिपु भी लोहा मान गया और पूछा – "अरे प्रह्लाद ! तेरे में यह शक्ति स्वाभाविकी है या कहीं से आई है ?" प्रह्लादजी कहते हैं कि जिसके हृदय में भगवान् आ जाएँ, उसमें यह प्रभाव स्वतः आ जाता है | जो हमें मारते हैं, मैं उनका भी मंगल चाहता हूँ, किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया मेरे हृदय में नहीं आती, सभी प्राणियों में केवल अपने इष्ट को ही देखता हूँ | **"सर्वं कृष्णमयं जगत्"** की भावना सदा रहती है | मन, वाणी, कर्म से जो परपीड़ा ही किया करते रहते हैं, उन्हें जीवन-पर्यन्त अथवा आगे आने वाले जन्मों में भी कष्ट ही भोगना पड़ेगा | जैसे - वटवृक्ष का छोटा-सा बीज कितना विशाल वृक्ष बन जाता है, वैसे ही दूसरों का अनिष्ट सोचने वालों का कर्म-बीज भयंकर कष्ट रूपी वृक्ष के रूप में अवश्य परिवर्तित हो जाएगा | प्रह्लादजी ने कभी किसी का अमंगल नहीं सोचा | ऐसा चमत्कार आज भी देखा जाता है, हमारे पूज्य गुरुदेव श्रीबाबा महाराज का विरोध करने वालों ने अनेक प्रयत्न उनकी जीवन-लीला समाप्त करने के लिए किये परन्तु जिनके हृदय में सतत् श्रीकृष्ण-दर्शन सर्वत्र होता हो, भला उनका अमंगल कौन कर सकता है...!! अपनी चतुराई के बल पर कोई व्यक्ति सुखी नहीं रह सकता | 'क्षमाशीलता' का जो उदाहरण जयदेव स्वामी ने रखा, वह अद्भुत है; यहाँ तक कि हाथ-पैर काटने वालों को भी उन्होंने सबसे अधिक सम्मान दिलवाया | राजा के पूछने पर भी जयदेवजी ने अपराधियों का नाम तक नहीं बताया | सहिष्णुता से भगवान् प्रसन्न होते हैं-

तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजन्तुषु | समत्वेन च सर्वात्मा भगवान् सम्प्रसीदति || (श्रीमद्भागवत ४/११/१३)

भगवद्भक्त में वही गुण आ जाते हैं जो भगवान् में होते हैं | उत्तम भागवत वही है जो शरीरों में एवं द्रव्यादि में मेरे-तेरे की वृत्ति नहीं रखता है, सर्वत्र श्रीहरि का ही दर्शन किया करता है –

न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा | सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः || (श्रीमद्भागवत ११/२/५२)

निष्काम भक्ति से भगवान् ही नहीं सम्पूर्ण जगत् प्रसन्न हो जाता है | श्रीबाबामहाराज के परम निष्काम कर्मयोगमय जीवन की रहनी ने न केवल ब्रजवासियों को बल्कि सारे विश्व को उपकृत किया है, ऐसे परमभागवत महापुरुष की भावराशि को पत्रिका के माध्यम से समस्त पाठकों तक पहुँचाने का एक अति अल्प प्रयास है, आशा है कि पाठकगण अवश्य ही लाभान्वित होंगे |

राधाकांत शास्त्री

व्यवस्थापक, मान-मन्दिर सेवा संस्थान

राधिका जन्म से ही हुआ प्रेमरस संचरित

वृषभानपुरी 'बरसाने' को रशंगजी ने बसाया था; रशंगजी रघुवंशी राजा थे, इनके पूर्ववंशानुक्रम की कथा इस प्रकार से है – महाराज दिलीपजी को प्रारम्भ में कोई सन्तान नहीं थी, इसका कारण है कि एक बार जब वह सशरीर स्वर्ग में इन्द्र की मदद करने गये, वहाँ देवताओं को विजय दिलाकर पृथ्वी पर लौटने लगे | वह अत्यधिक शीघ्रता के साथ चल रहे थे क्योंकि उनकी रानी सुदक्षिणा ऋतुस्नाता (संतानोत्पत्ति हेतु शुभ मुहूर्त में स्थित) थीं, जो पुत्र की कामना से कातर हो रही थीं | मार्ग में राजा दिलीप को कामधेनु गाय के दर्शन हुये परन्तु उचित समय पर अपने सदन पहुँचने की त्वरा में वे उसे प्रणाम करना भूल गये, कामधेनु ने शाप दे दिया – "दिलीप ! तू पुत्र की कामना से जा रहा है लेकिन अब तुझे पुत्र की प्राप्ति नहीं होगी क्योंकि तूने मेरा अपमान किया है |" उस समय आकाशगंगा में ऐरावत हाथी क्रीड़ा कर रहा था, इसलिए दिलीप को कामधेनु का शाप सुनायी नहीं पड़ा और वह अपने महल वापस आ गये किन्तु कामधेनु के शापवश वह दीर्घकाल तक पुत्रोत्पत्ति से वंचित रहे | एक दिन गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ जी के पास जाकर उन्होंने अपनी मनोव्यथा प्रकट की – "गुरुदेव ! मैंने अनेकों यज्ञ किये परन्तु पुत्र की प्राप्ति अब तक नहीं हो सकी |" वशिष्ठजी ने कहा – "दिलीप ! तुम कामधेनु द्वारा शापित हो अतः उस दिव्य गौ की सेवा करो |" दिलीप ने कहा – "गुरुदेव ! कामधेनु तो स्वर्ग में है अतः मैं उसकी सेवा किस प्रकार कर सकूँगा |" वशिष्ठजी ने कहा – "कामधेनु की पुत्री नन्दिनी मेरे आश्रम पर है, वहाँ जाकर तुम उसकी सेवा करो |" गुरु-आज्ञा प्राप्त कर दिलीप अपनी भार्या रानी सुदक्षिणा से बोले – "हे देवी ! गुरुदेव ने मुझे कामधेनु की पुत्री 'नन्दिनी गौ' की सेवा करने के लिए प्रेरित किया है |" सती सुदक्षिणा ने कहा – "हे स्वामी ! ये तो अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है, अब तो हम दोनों मिलकर नन्दिनी की सेवा करेंगे, चलिए वन में गुरुदेव के आश्रम पर चलते हैं |" इस प्रकार राजा और रानी गुरु वशिष्ठ के आश्रम पर पहुँचे | सुदक्षिणा अपनी कमर में गौसेवा हेतु फेंटा बाँधकर गोबर फेंका करती थीं और इस तरह अत्यन्त श्रद्धा और परिश्रमपूर्वक वह नन्दिनी की सेवा में समर्पित हो गयी | नन्दिनी की सेवा दम्पत्ति (राजा व रानी) ने इस प्रकार से किया कि वह परम प्रसन्न हो गयीं और एक दिन उसने परीक्षा लिया | नन्दिनी की माया के प्रभाव से एक सिंह
वन में आया और उसे मुँह में दबोच लिया | गौ-सेवा में पूर्णरूपेण समर्पित दिलीप ने अपना धनुष उठाया किन्तु सिंह हँसने लगा और बोला – "दिलीप ! तू चाहे जितने भी दिव्य अस्त्रों का मेरे ऊपर प्रयोग कर, मेरे ऊपर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ने वाला क्योंकि मैं देवी दुर्गा का वाहन हूँ, मैं तो इस गाय को अवश्य खाऊँगा, यह मेरा भोजन है |" दिलीपजी बोले कि तुम इन गौमाता के बदले मेरा शरीर ले लो किन्तु इसे छोड़ दो | सिंह ने परीक्षा लेते हुए कहा – "नहीं, तुम राजा हो, तुम्हारा अन्त हो जाने पर इस संसार की रक्षा कौन करेगा |" महाराज दिलीप अड़े रहे और बोले – "तू मुझे खा ले किन्तु इस गाय को छोड़ दे |" सिंह बोला – "तो अब तू मरने के लिए तैयार हो जा |" दिलीप – "हाँ तैयार हूँ |" सिंह आकाश में भंयकर गर्जना करते हुए उड़ा और झपटकर दिलीप के ऊपर तीव्र वेग से हमला किया | जब सिंह दिलीप के ऊपर गिरा, उसके वेग से उनके शरीर पर धक्का लगा तो उन्होंने देखा कि गले में पुष्पमाला है, सिंह नहीं है | इतने में नन्दिनी ने कहा – "दिलीप ! यह मेरी माया थी, मैंने तेरी परीक्षा ली थी, उसमें तू सफल हो गया, अब तू मेरे दुग्ध का पान कर, इससे एक दिव्य सन्तान उत्पन्न होगी |" दिलीप ने नन्दिनी से कहा कि गुरुदेव की आज्ञा बिना मैं तुम्हारे दुग्ध को ग्रहण नहीं कर सकता | माँ ! तू मुझ पर प्रसन्न हो गयी है किन्तु प्रथम स्थान तो गुरु का ही होता है | नन्दिनी ने

कहा – "तू दूसरी बार भी परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया | यदि बिना गुरुदेव की अनुमति के तुम मेरे दुग्ध को पी लेते तो सन्तान तो उत्पन्न होती किन्तु वह तेजस्वी नहीं होती परन्तु अब तेरे एक ऐसी सन्तान उत्पन्न होगी कि सम्पूर्ण वंश उसी के नाम से सुविख्यात होगा | (आगे वही रघुवंश हुआ; सूर्यवंश में रघु पैदा हुये और उसी वंश में भगवान् राम के अवतरित होने पर भी इस वंश का नाम रघुवंश ही कहलाया, राम वंश से इसकी ख्याति नहीं हुई | प्रभु राम में जो प्रभाव था, उनसे अधिक प्रभाव रघु में था |) अतः दिलीपजी ने गुरु वशिष्ठजी से कहा – "हे गुरुदेव ! नन्दिनी ने आपसे अनुमति लेकर ही मुझे दुग्ध पान करने की आज्ञा दी है |" महर्षि वशिष्ठजी ने कहा कि मैं अनुमति प्रदान करता हूँ, तुम नन्दिनी का दुग्धपान अवश्य करो, इसके प्रभाव से तुम्हें एक दिव्य सन्तान की प्राप्ति होगी | दिलीप ने पयपान किया और इसके चमत्कारिक परिणामस्वरूप उनके यहाँ चार पुत्रों का जन्म हुआ | कालान्तर में दिलीप ने अपने राज्य को चार भागों में विभाजित कर चारों पुत्रों को उसे सौंप दिया | गौ-सेवा के चमत्कार से प्रभावित होने के कारण दिलीप के सबसे छोटे पुत्र धर्म ने कहा – "पिताजी ! मुझे राज्य नहीं चाहिए, मैं तो गौ-सेवा करूँगा |" दिलीपजी बोले – "ठीक है, तुम गौचारण करो, गौ-सेवा राज्य के शासन से भी अधिक महत्वपूर्ण है |" इसी वंश में आगे चलकर अभयकर्ण हुए | जब रघुवंश में भगवान् राम का प्राकट्य हुआ तो उन्होंने अपने सबसे छोटे भाई शत्रुघ्न को आज्ञा दी कि तुम ब्रज चले जाओ, मथुरा में लवणासुर दैत्य का वध करो | शत्रुघ्नजी जब ब्रज को चले तो वहाँ उपस्थित अभयकर्णजी ने उनसे कहा – "काका जी ! मैं भी ब्रज चलूँगा |" शत्रुघ्न जी ने पूछा – "क्यों ?" अभयकर्ण जी बोले – "मैंने सुना है कि ब्रज में यमुना तट पर मनोहारी दिव्य छटा व हरी-हरी सुमधुर घास है, उससे गौवंश अत्यन्त शीघ्र पुष्ट होता है | मुझे तो आजीवन गौ-सेवा करनी है, इसी उद्देश्य से मैं ब्रज चलना चाहता हूँ |" शत्रुघ्नजी ने प्रसन्न होकर कहा – "चलो, अवश्य ही ब्रज-गमन करो |"

श्रीमद्भागवत में ब्रज के बारे में उल्लेख है –

तत्र गाः पाययित्वापः सुमृष्टाः शीतलाः शिवाः ।
ततो नृप स्वयं गोपाः कामं स्वादु पपुर्जलम् ||

(श्रीभागवतजी १०/२२/३७)

"श्रीकृष्ण-लीलाकाल में यमुना-जल इतना उज्ज्वल, मीठा, मधुर और कल्याणकारी था कि उसका पान करने मात्र से ही क्षुधा-निवृत्ति हो जाती थी | गौचारण करते समय जब ग्वालबाल यमुना-जलपान करते तो उनको भूख नहीं लगती थी |" इसलिए श्रीराधामाधव की रसमयी लीलाओं से अभिसिंचित ब्रजभूमि की सहज परमप्रेमप्रद सुविशेषताओं के कारण ही अभयकर्णजी ब्रज में आये और यमुना तट पर गौ-चारण करने लगे | शुद्ध यमुना जल इतना मीठा होता है कि इसके बारे में कहा गया है कि गंगाजी में रहने वालीं मछलियाँ यमुनाजी में जीवित रह सकतीं हैं परन्तु यमुनाजी की मछलियाँ गंगाजी में जीवित नहीं रह सकती हैं | अभयकर्ण जी के ही वंश में आगे चलकर राजा रशंग जी हुए | इन्होंने भी ब्रज में गौचारण किया | एक बार वे गायों को चराते हुए बरसाने की ओर आये, इन्होंने यहाँ देखा कि ब्रह्माचल पर्वत के चार अत्यन्त विशाल और रमणीय शिखर हैं - मानगढ़, दानगढ़, विलासगढ़ और भानुगढ़ | बरसाने का एक नाम बृहत्सानु भी है | ऐसा स्थान जहाँ श्रेष्ठ पर्वत शिखर हैं, ऐसा परम रमणीक स्थल संसार में अन्यत्र कहीं नहीं है | चारों शिखर समीप में ही स्थित एक-दूसरे से मिले हुए हैं | चारों शिखरों की पृथक-पृथक शोभा है | बरसाने की ऐसी अलौकिक छटा देखकर रशंगजी अतिशय प्रसन्नता से बोल उठे – 'मुझे यहीं बरसाने में ही रहना है, अब मैं कहीं और नहीं जाऊँगा, मैं तो बरसानावासी हो गया |" इस ग्राम का नाम 'वरषाणा' भी है क्योंकि यहाँ निरन्तर रस की वर्षा होती रहती है |

"जय बरसानो गाँव जय जय श्री राधे |
महारानी को गाँव जय जय श्री राधे |

राधारानी को गाँव जय जय श्री राधे |"
रशंगजी ने बरसाने को बसाया और दृढ़ निश्चय कर लिया कि अब मैं बरसाने में ही सदा-सर्वदा निवास करूँगा, कभी भी इस रसमय वृषभानुपुरी को नहीं छोडूँगा | रशंगजी के ही वंश में श्रीवृषभानुजी उत्पन्न हुए और उन्हीं की पुत्री के रूप में श्रीराधारानी का आभिर्भाव हुआ | "श्रीराधारानी की - जय हो |"

"भादों सुदी अष्टमी तिथि भयी, कीरति के कन्या सुखरासी ||"
भाद्रमास की अष्टमी तिथि को वृषभानुजी की धर्मपत्नी रानी कीर्तिजी से एक दिव्य कन्या का प्राकट्य हुआ | इस कन्या के कारण वृषभानुजी का यश त्रिलोकी में चहुँ ओर फैला | वृषराशि पर जब सूर्य आता है तो उसका तेज असह्य होता है, श्रीराधारानी के पिता का नाम 'वृषभानु' इसलिए पड़ा क्योंकि इनका यश अखिल ब्रह्मांड में प्रसरित हुआ |

"श्रीवृषभानु महीपति को यश फैल रह्यो चहुँ ओर उजसि |"
वृषभानुजी की कन्या का नाम 'राधा' था |

"राधा राधा नाम कहैं, नाम लली को बाधा नाशी |"
'राधा' नाम उच्चारण करने पर करोड़ों जन्मों की बाधाएँ नष्ट हो जाती हैं, क्योंकि 'राध' धातु हिंसायाम्, 'राध' धातु के कई अर्थ हैं, जिस अर्थ में इसका तात्पर्य हिंसा से है, उसमें समस्त पाप, बाधाएँ और संकट समाप्त हो जाते हैं | दिव्य कन्या के जन्म का समाचार सुनते ही बरसाने में चारों ओर बधाई बज गयीं और जब बरसाने में बधाई बजी तो तीनों लोकों में एक साथ वृषभानुनन्दिनी के जन्म की बधाई बजीं –

"श्री बरसाने बधाई बजी | तिहुँ लोक करें सब धूम-धुमासी ||
जय बरसानों गाँव जय जय श्री राधे |
जय जय राधा नाम जय जय श्री राधे | |"
भाद्र मास की अष्टमी तिथि को अनुराधा नक्षत्र में प्रातःकाल कीर्तिकन्या के जन्म के मंगलमय अवसर पर वृक्षों पर चढ़कर ब्रजवासी चिल्लाने लगे – 'वृषभानुजी के यहाँ एक कन्या का जन्म हुआ है |' इतना सुनते ही नगाड़ा और शहनाई की मांगलिक ध्वनियाँ गूँजने लगीं |

"जैसेइ जन्म सुनो राधे को, दुन्दुभी बाज रही शहनाई |"
जब बरसाने में ब्रह्माचल पर्वत के ऊपर शहनाई बजी तो तीनों लोकों में भी एक साथ शहनाइयाँ बजाई जाने लगीं | आकाश-पाताल आदि सभी स्थलों पर यही ध्वनि मुखरित हो उठी – "राधा जन्म हुआ है, राधा का प्राकट्य हुआ है, राधारानी की जय हो –

"ब्रज की कहा कहौं सजनी, तिहुँ लोक बजी आनन्द बधाई |"
एक क्षण में ही सम्पूर्ण ब्रज में सबको यह पता पड़ गया कि वृषभानुजी के यहाँ कन्या का जन्म हुआ है | उस जमाने में लाउडस्पीकर, रेडियो, टेलीफोन अथवा वायरलैस यंत्र नहीं थे किन्तु एक क्षण में ही सबको सूचना प्राप्त हो जाती थी; कैसे ? जैसे बरसाने से कोई बात बरसाने के बाहर तक कहनी हैं तो लोग ऊँचे पेड़ पर बैठकर नगाड़ा बजाते थे, दूसरे गाँव वाले भी नगाड़े की आवाज सुनकर अपने गाँव के पेड़ पर चढ़कर तीव्रता के साथ नगाड़ा बजाते थे, इस तरह दूसरे-तीसरे-चौथे क्रमशः सभी गाँवों के लोग पेड़ों पर चढ़कर तीव्र ध्वनि के साथ नगाड़े बजाते थे, इस तरह सभी जगह सूचना फैल जाती थी | प्राचीन भारत में किसी सूचना अथवा समाचार को सब ओर प्रेषित करने की यही परम्परा थी | इसी परम्परानुसार बरसाने के ब्रजवासियों द्वारा श्रीजी के जन्म का समाचार सारे ब्रज में प्रसारित कर दिया गया | सम्पूर्ण ब्रज के ब्रजवासी राधारानी का दर्शन करने और उनकी जन्म बधाई में सम्मिलित होने के लिए बरसाने की ओर दौड़े |

धाय चले ब्रजवासी जब सब, रच पचके सिंगार बनाये ||
(आज से लगभग ६५ वर्ष पूर्व जब पूज्य श्रीबाबामहाराज ब्रज में आये तो उन्होंने देखा कि श्रीजी के मन्दिर में समाज-गायन 'लीलासम्बंधी पदगान' हेतु गोस्वामीगण आते थे तो उनके सिर पर पाग और दिव्य वेष होता था, ऐसा प्रतीत होता था कि आकाश से उतरकर किसी दिव्य लोक से आये हैं |)
इधर बरसाने में श्रीजी के जन्म-महोत्सव पर जो भी जाता, नाचते हुए जा रहा था क्योंकि श्रीजी की जन्म-बधाई के दिन जिसने नृत्य नहीं किया, उसका शरीर व्यर्थ है |

"नाचत गावत करत कोलाहल" नृत्य करते हुए ब्रजवासी कह रहे हैं –

"आज बधाई कीरति माई |" ब्रज के गाँव-गाँव से जो भी बरसाने आ रहा है, वृषभानु बाबा ने अपना भंडार खोल दिया, याचकों के लिए, अतिथियों के लिए खुली छूट थी, हीरा लूट लो, मोती लूट लो, मणि लूट लो | श्रीजी के समाज में पद गाया जाता है कि राधाष्टमी के दिन स्वयं लक्ष्मीजी सेवा के लिए आ गयीं | ब्रज में असंख्य मणियाँ भर गयीं | वृषभानुजी मणियाँ लुटा रहे हैं किन्तु कोई ब्रजवासी उन्हें ले नहीं रहा है, इसको 'ब्रजवासी' कहते हैं |

"जन्मी भानुलली सुनके, चले ब्रजवासी रंग रचाय |"

देने पर भी ब्रजवासी बहुमूल्य रत्नों को नहीं ले रहे हैं, माँगना तो बहुत दूर की बात है | (लगभग ६५ वर्ष पूर्व श्रीबाबा महाराज ने ऐसे ब्रजवासियों को देखा जो मन्दिर में अर्पित किये गये धन को ग्रहण नहीं करते थे | महाराजश्री ने एक वृद्ध ब्रजवासी, जो बरसाने में रहता था, उससे पूछा – "बाबा ! आप मन्दिर में चढ़ाये गये धन को क्यों नहीं लेते ?" उसने फटकारते हुए कहा – "अरे बाबाजी ! तू कैसी बात करै, कहा छोरी कूँ धन हम हड़पेंगे, राधा हमारी छोरी है, वाकौ धन हम काहे कूँ लेंगे, तुम्ह ऐसी बातन् कूँ काहे कहो |" बरसानानिवासी ब्रजवासी का ऐसा दिव्य भाव सुनकर श्रीबाबामहाराज ने कहा – "हे बाबा ! हमने गलत कह दिया, क्षमा करो |")

श्रीजी के मन्दिर में एक पद गाया जाता है – **"महर के कपड़ा कोट लुटत हैं |"** राधाजन्मबधाई में करोड़ों वस्त्र लुटाये जाते हैं लेकिन कोई उन्हें लेता नहीं है | **"मोती माणिक लेत न याचक |"** वृषभानुबाबा याचकों से कहते हैं कि मणि-मोतियाँ आदि रत्नों को लूट लो, इन्हें ले जाओ किन्तु याचकजन वृषभानुजी से कहते हैं – नहीं..., बाबा ! हम तेरे मणि-माणिक, मोती आदि नहीं लेंगे | वृषभानुजी ने पूछा तो फिर क्या लोगे ? याचक बोले –

"हमे राधा का मुख दिखा दो | मोती-माणिक लेकर हम क्या करेंगे ?" **"राधा दर्शन आस लगाये |"**

इसके बाद दधिकांदो आरम्भ हुआ | दूध-दही और माखन फेंका जाने लगा |

"नाचत- गावत गोपिका गोप जू, दूध-दही हल्दी लपटाए |"

गोप-गोपिकागण एक-दूसरे के ऊपर दूध-दही के बड़े-बड़े माट उड़ेल रहे हैं और बोलते हैं – 'हर-हर गंगे |' बरसाने की गोपिकाओं ने यशोदा मैया और नन्द बाबा को पकड़ा, वे भी बधाई देने आये थे | गोपियों ने यशोदा मैया से कहा – "यशोदा ! तू तो बधाई के गीत गाकर हमें सुना और नन्दबाबा नाचेंगे | तुम दोनों मिलकर नाचो और गाओ |"

"गवाये बधाये यशुमति के,
मिल आँगन नन्दहिं नाच नचाये |"

ब्रज में एक प्राचीन प्रथा है 'चाव' ले जाने की | जिसको नहीं पता है, वह आज भी इसे देख सकता है | राधाष्टमी महोत्सव एक सप्ताह तक चलता रहता है, उसमें ब्रजवासीजन 'चाव' ले जाते हैं | (टोल के टोल ब्रजवासी गाते-बजाते हुए राधा लाली के लिए खिलौना, आभूषण, छोटी-सी लाली है तो उसके लिए नीली झिंगुली, कड़ा-छड़ा, मिठाई आदि भेंट की सामग्रियाँ लेकर आते हैं, इसे ब्रजवासीजन ब्रजभाषा में 'चाव' कहते हैं |)

राधिकालाली के जन्मोत्सव पर सम्पूर्ण ब्रज से चाव आ रही है | **"नाचत मोद भरी सब गोपी"** गोपिकाएँ नृत्य करते हुए चाव ले जा रही हैं –

"गाय रहीं हुलसाय बधाई |"

(पूज्य बाबा महाराज जब ब्रज में आये थे तो राधाष्टमी के अवसर पर 'बाबाश्री' भी चाव ले जाने वाले ब्रजवासियों के साथ बधाई के गीत गाते हुए श्रीजी मन्दिर जाते थे |)

"कंचन थार लिये सिर पे, चली भानुभवन लिये चाव बधाई |
कीरति के जनमी एक कन्या, यह बात सुनी नहिं फूली समाई ||"

सभी ब्रजांगनाएँ राधाजन्म की बात सुनने से अति प्रसन्नता के कारण पहले से अधिक स्थूल (मोटी) हो गयीं, अंगों में स्थूलता की इतनी वृद्धि हुई कि लंहगा-फरिया-चोली आदि वस्त्र धारण करना भी सहज नहीं रह गया | ये ब्रजदेवियाँ वृषभानुभवन पहुँचकर परस्पर जय-जयकार कर रही हैं | **"कीरति के जयकार मची |"**

कोई वृषभानु बाबा की तो कोई कीर्ति मैया की और कोई राधारानी की जय-जयकार बोल रहे हैं |

"कहूँ भानु की, राधा की जय जय सुनाई |"

बोलो - कीर्ति मैया की जय हो, वृषभानु बाबा की जय हो, राधारानी की जय हो |

"बजी बधाई भानुभवन में, गोपी ग्वाल जू नचे बधाई |"

चाव लेकर ब्रजस्त्रियाँ वृषभानुभवन में पहुँच कर उमंग में भरकर नृत्य करने लगती हैं |

"मन्दिर-मन्दिर श्री बरसाने, घर-घर गली बधाई-बधाई |"

बरसाने के हाट (बाजार) बंद हो गये | हर दुकान पर बधाई-उत्सव मनाया जाने लगा | दुकानदारों ने सौदा बेचना बंद कर दिया |

"घाट बधाई बाट बधाई पर्वत ऊपर मची बधाई |"

ब्रह्माचल पर्वत के शिखरों मानगढ़, दानगढ़, मोरकुटी, विलासगढ़ आदि सभी स्थलों पर राधिका-जन्मोत्सव की बधाइयाँ गाई जा रही हैं | (आज भी राधाष्टमी के परममंगलकारी सुअवसर पर बरसाने की गलियों, बाजारों और ब्रह्माचल पर्वत की शिखरों पर बधाई-रसोत्सव का ऐसा ही दिव्य दृश्य चहुँओर दृष्टिगोचर होता है |)

आकाश में भी बधाई-गान हो रहा है –

"नभ मंडल में छाई बधाई, देव करें जयकार बधाई |"

बधाई-उत्सव से कोई घर वंचित नहीं रहा, गली नहीं बची, हाट (बजार) नहीं बचा, यहाँ तक कि बरसाने के सरोवर भी नहीं बचे –

प्रिया कुण्ड पै भयी बधाई, प्रेम सरोवर छाई बधाई |
भानोखर आनन्द बधाई, बरसाने नर-नारी बधाई ||
खोर साँकरी की गलियन में, जुरी मण्डली गाय बधाई |
गह्वरवन ह्वै रही बधाई, मन्दिर मान बधाई-बधाई ||

राधाष्टमी के दिन केवल नर-नारियों और देवताओं ने ही 'श्रीराधिकाजन्म बधाई-उत्सव' नहीं मनाया अपितु-

कुञ्जन-कुञ्जन श्री राधा को, जन्म महोत्सव बजी बधाई |
पात-पात पे फूल-फूल पे, गावत भ्रमर समूह बधाई ||

बरसाने की प्रत्येक कुञ्ज में श्रीराधाजन्ममहोत्सव की बधाई मनाई जाने लगी | वृक्षों के पत्र-पुष्प पर बैठे भ्रमर भी श्रीराधाजन्म-बधाई का गायन करने लगे | **"शुक पिक मैना हंस चकोरा |"** तोता-मैंना और हंस व चकोर आदि पक्षी भी बधाई- गायन में सम्मलित हो गये |

"पंख खोल नचे मोर बधाई, ग्वाल बधाई खिरक बधाई |"

मयूर अपने रंग-बिरंगे पंख फैलाकर नृत्य करते हुए बधाई-उत्सव मनाने लगे | गाय-बछड़े भी बधाई के आन्दोत्सव में सहभागी बन गये | **"गौ-गौवत्स बधाई-बधाई |"** यह बधाई उत्सव तो बरसाने में मनाया गया किन्तु वृन्दावन में क्या हुआ?

"वृन्दावन उमग्यो राधा को |" राधारानी के जन्म की बधाई देने के लिए यमुनाजी में प्रेम और आनन्द की बाढ़ आ गयी | **"उमगी यमुना रस सरिता री |"** जैसे श्रीकृष्ण-जन्म के समय सम्पूर्ण ब्रज-वृन्दावन पुष्पों से लद गया था, वैसे ही श्रीराधारानी के प्राकट्य होने पर भाद्रपद शुक्लपक्ष में ब्रज-वृन्दावन की सारी धरती पुष्पों से लद गयी | **"पुष्पमयी भई ब्रज-अवनी |"** ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि वृन्दावन की धरा ने विचार किया कि बहुत ही शीघ्र हमारे ऊपर रास की रचना होगी |

"रचिहैं निशि रास शरद उजियारी |"

हर लता 'पुष्प' से लद गयी, वृक्षों से मधु-धाराएँ बहने लगीं |

फूली लता वृक्ष मधु झर रहे, झरना झरे अमित रस भारी
जीवन मूरि कृष्ण की प्रकटी, कृष्ण प्राण की पोषणहारी ||

श्यामसुन्दर की जीवनप्राणाधार श्रीजी के प्राकट्य से सभी दिशाओं में प्रेमरसानन्दोत्सव उमड़ रहा है |

रशंगजी ने बरसाने का नामकरण किया था - **'वरषाणा'** - इसका अभिप्राय है कि यहाँ सर्वदा रस बरसता रहता है, यह दिव्य भूमि है | रशंगजी ने दृढ संकल्प कर लिया था कि मैं कभी बरसाने को नहीं छोडूँगा, इसीलिए जब उनके वंश में राधारानी का प्राकट्य हुआ तो उन्होंने भी कभी बरसाने को नहीं छोड़ा | किशनगढ़ के राजा, परमरसिक भक्त श्रीनागरीदासजी बरसाने में आये और देखा कि बरसाना बहुत सुंदर है, इसके बाद उन्होंने आजीवन बरसानावास किया, इनकी धाम-निष्ठा का एक प्रसिद्ध पद है – **तलहटी बरसाने की रहिये ||**

बरसाने की तलहटी में रहो | प्रश्न हुआ कि यहाँ क्यों रहा जाए तो आगे की पक्तियों में वह उत्तर देते हैं –

नितप्रति श्री वृषभानु सुता के, हुलस-हुलस गुण गइये |
खोर साँकरी के भीतर चल, कृष्ण कुण्ड पर अइये ||
गह्वरवन की बैठ लतन में, राधा-राधा गइये |
मोर कुटी और दान मानगढ़, गढ़ विलास सुख पइये ||
सदा सर्वदा पर्वत ऊपर, नित प्रति चढ़-चढ़ जइये |
नागरिदास वास बरसानों, कुँवरि दिए सो पइये | |

जब श्रीबाबामहाराज प्रथम बार बरसाना आये तो उनके गुरुजन श्रीप्रियाशरणजी महाराज व गह्वरवनवासी पंडित श्रीहरिश्चंद्रजी महाराज ने उनसे कहा था कि कभी भी बरसाने को मत छोड़ना | तब से बाबाश्री को यहाँ निवास करते हुए ६५ वर्ष व्यतीत हो गए, आज भी सुदृढ़ निष्ठापूर्वक वह अखण्ड बरसानावास कर रहे हैं | ६५ वर्ष पहले मानगढ़ डाकुओं का अड्डा बना हुआ था लेकिन जब पूज्य श्री बाबा महाराज ने आकर यहाँ निवास किया तो चोर, डाकुओं ने आपको हुए यहाँ से निकालने के लिए भरसक प्रयत्न किया, श्री बाबा महाराज को बारह बंदूकें, हिंसक हथियार आदि दिखाकर आतंकित करने का प्रयास किया गया किन्तु आपने भी सुदृढ़ संकल्प कर लिया था कि भले ही प्राण चला जाए तो चला जाए किन्तु मानगढ़ को नहीं छोड़ूंगा, अन्त में अनिष्टकारी लोग अपने-आप मानमंदिर को छोड़कर चले गये | इसलिए सच्चे धामनिष्ठ जनों का कभी भी अनिष्ट-अमंगल नहीं होता है, बल्कि ऐसे निष्ठावान भावुक भक्तों की क्रियात्मक जीवन-रहनी व उनके सत्संग-उपदेशामृत से अन्य श्रद्धालुओं की भी धाम के प्रति निष्ठा-प्रेम-सेवा आदि भावनाओं का संपोषण होता है | श्रीजी के धाम के प्रति प्रेम-निष्ठा का बाबाश्री द्वारा रचित एक रसिया है – **"राधारानी को रंगीलो दरबार,**

पर्‌यो रह कुंजन में |"

लीलाकाल में श्रीजी के करकमलों से निर्मित गह्वरवन की लता-पता, कुंज-निकुंजों आदि का सरस सुव्यवस्थित स्वरूप आज भी सुशोभनीय लगता है | श्रीराधारानी के धाम बरसाना या ब्रज में वास करते समय यदि चोर-डाकू आकर हमला करें, मारे-पीटें, प्राण चला जाए तब भी इस रसमय धाम को मत छोड़ना |

"मार-धाड़ सबकी तू सहियो"

प्रथम बार जब श्रीबाबामहाराज मानगढ़ पर आये तो यहाँ चोर-डाकुओं द्वारा लूट के माल का बँटवारा होता था | एक दिन वे बरसाने से वस्त्रों की चोरी करके यहाँ लाए, वस्त्रों की सैकड़ों पोटें थीं | उस समय श्री बाबा महाराज के साथ मानगढ़ पर नीचे के भाग में एक अन्य महात्मा भी रहते थे | पूज्यश्री ने उनसे पूछा कि ये क्या बँधा रखा है ? उन महात्मा ने कहा – "कुछ बोलो नहीं, वरना मारे जाओगे |" श्रीमहाराजजी ने समझ लिया कि यह तो अत्यधिक विकृत स्थिति है, उन्होंने तय कर लिया कि भविष्य में मानमंदिर पर ऐसा दुष्कृत्य नहीं होने दिया जाएगा, या तो यहाँ मैं रहूँगा अथवा ये चोर-डकैत निवास करेंगे | श्रीबाबा ने उन महात्मा से कहा कि जब वे दस्यु आधी रात को आयें तो उन्हें मेरे इस संकल्प से अवगत करा देना और मुझे जगा भी देना | श्रीबाबामहाराज की दृढ़ता, उनकी निर्भीकता को देखकर ये चोर-डाकू मानगढ़ से अपनी लूट का सामान उठाकर चले गए और दूसरे महात्मा से कह गये कि श्रीबाबा से कह देना कि हमने मानमंदिर छोड़ दिया है | श्रीबाबामहाराज को विश्वास नहीं हुआ, वह डंडा लेकर टहलने गये तो देखा कि मंदिर के पिछले हिस्से में वे 'लुटेरे' लूट की सामग्री गाड़ कर चले गये थे |

श्रीबाबा ने पुनः महात्माजी से कहा कि उन चोरों से कह दो कि या तो वे मंदिर को बिल्कुल खाली कर दें अथवा मुझे जान से मार जायें, मैं मृत्यु से नहीं डरता | श्रीबाबा के निरंकुश, अति निडर स्वभाव और श्रीजी की कृपा से इन दस्युओं ने मानगढ़ सदा-सर्वदा के लिए छोड़ दिया जबकि वे तो अत्यंत प्रचण्ड थे, बन्दूकें रखते थे परन्तु श्रीजी की इच्छा से वे इस मानलीलाभूमि को छोड़ गये और तब से यहाँ श्रीमानबिहारीलाल का अखण्ड राज्य हो गया | कथनाशय है कि बिना कष्ट सहे कोई उपलब्धि नहीं होती है | इसीलिए ब्रजवास हेतु यह शर्त है –

मार-धाड़ सबकी तू सहियो,

भूख प्यास को ध्यान न रखियो |

ब्रज में नया-नया आगमन होने के समय में श्रीबाबामहाराज भिक्षावृत्ति से परिचित नहीं थे, बिना याचना के एक-दो दिन में जो भी खाने को मिल जाता, उसी से उदरपूर्ति कर लेते थे | इसी अयाचक-वृत्ति से वह सम्पूर्ण ब्रजमण्डल में भ्रमण किया करते थे | अयाचक-वृत्ति से ही बाबाश्री नंदगाँव में नन्द-बगीची के निकट तिवारी में रहते थे और नन्दभवन के अन्न क्षेत्र में एक बार जाकर जो भी प्रसाद मिलता, उसी से जीवन-निर्वाह करते हुए कुछ दिन नंदगाँव में भी रहे | ब्रजवास करना है तो कष्ट सहना पड़ेगा; जब ऐसा मन बन जाएगा, तब अवश्य युगल सरकार की कृपा होती है – तब कृपा करें सरकार, पर्‌यो रह कुंजन में |

"राधा राधा रटन लगैयो, तन मन धन सों सेवा करियो, भूख प्यास को ध्यान न रखियो |"

ब्रज की सेवा अवश्य करना, यही श्रीचैतन्यमहाप्रभु ने भी कहा था | देखो, सेवा का भाव हृदय में रहेगा तो कोई भी कमी नहीं रहेगी | मानमंदिर द्वारा संचालित श्रीराधारानीब्रजयात्रा में सहयोग करने वाले एक महात्मा ने श्रीबाबामहाराज से एक बार कहा कि ब्रजयात्रा के लिए आप कुछ शुल्क रखिये, नहीं तो भविष्य में निःशुल्क यात्रा का निर्वाह असंभव है | श्रीबाबा ने सुदृढ़तापूर्वक कह दिया कि शुल्क तो कभी नहीं लूँगा, यात्रा बंद होती है तो हो जाए | धर्म को कभी भी व्यापार नहीं बनाऊँगा | ब्रजयात्रा में प्रतिवर्ष करोड़ों रुपयों का व्यय होता है किन्तु मानमंदिर का कोई सदस्य आज तक किसी के द्वार पर चंदा मांगने नहीं गया, किसी का दरवाजा इस आशय से नहीं खटखटाया कि तुम हमें कुछ दो - चावल दो, दाल दो; ऐसा कभी किसी से नहीं कहा गया | यहाँ तक कि श्रीमाताजी गौशाला में लगभग ५० हजार गायें हैं, जिसका एक दिन का खर्च लगभग २५ लाख से अधिक रुपयों का है लेकिन कभी एक पैसे का भी चन्दा नहीं माँगा गया; क्योंकि श्रीजी ही सब कार्य पूर्ण करती हैं, इसके लिए शर्त यही है कि हृदय में सेवा का सच्चा भाव होना चाहिए | मानगढ़ द्वारा ब्रज में अनेकों कुण्डों, सरोवरों आदि का जीर्णोद्धार किया गया, जिनमें करोड़ों की धनराशि का व्यय हुआ | अभी कुछ समय पूर्व ही ब्रज के आदिबद्री तीर्थस्थल में देव-सरोवर का निर्माण किया गया तथा बरसाना में प्रियाकुण्ड के शोधन जैसा असंभव कार्य पूर्ण किया गया; इनमें भी बहुत अधिक द्रव्य का व्यय हुआ परन्तु कभी किसी से धन की याचना नहीं की गयी | इसलिए भूख-प्यास का ध्यान मत रखो, किसी जीव का आश्रय मत लो, धन की याचना मत करो; चाहे करोड़ों नहीं, अरबों रुपये की धनराशि का व्यय हो जाए, श्रीजी सब कुछ प्रदान करेंगी, अवश्य करेंगी, इसलिए केवल श्रीभगवान् का ही आश्रय पकड़ो, संसारी मनुष्यों का आश्रय कभी भी मत लो –

"तेरो ह्वै जाए बेड़ा पार, पर्‌यो रह कुंजन में |"

श्रीमानमंदिर की आराधिकाओं की निवास-स्थली रसकुञ्ज और आराधना-भवन रसमंडप के निर्माण में करोड़ों रुपयों का खर्च हुआ किन्तु किसी से धनराशि की याचना अथवा दान के लिए नहीं कहा गया कि हमें इतने धन की आवश्यकता है; इसका यह परिणाम हुआ कि श्रीजी ने बेड़ा पार किया | इसलिए हे भक्तजनों ! राधारानी के इस नित्य रसमय रंगीले दरबार को कभी मत छोड़ना | परम ब्रजनिष्ठ श्रीबाबामहाराज ने 'रसमय बरसाने' को नहीं छोड़ा, एक बार खनन माफियाओं ने बंदूक लेकर हत्या करने के लिए मानगढ़ पर हमला करने की चेतावनी दी किन्तु आज तक कभी कुछ भी हानि नहीं हुई | इसीलिए ब्रज रसिक महापुरुष ने कहा है –

इन द्वारन सो कबहुँ न हटियो, देहरी पर सिर घिसतो रहियो |

रस बरसै धूँआधार, पर्‌यो रह कुंजन में ||

किसी दूसरे के द्वार का आश्रय मानमंदिर सेवा संस्थान द्वारा कभी नहीं लिया गया, किसी सेठ से सहायता की भीख नहीं माँगी गयी कि तू हमें कुछ दे, ऐसा इस जीवन में कभी भी नहीं हो सकता, क्यों ? क्योंकि बरसाने का एक नाम 'वरषाणा' है अर्थात् यहाँ निरंतर रस की वर्षा होती है |

आज भी मानमंदिर के 'रसाराधना भवन रसमंडप' में प्रतिदिन श्रीकृष्ण-रस में निमग्न कर देने वाली रसमयी वर्षा हुआ करती है, हर रोज वहाँ नृत्य-गानमयी कृष्णाराधना होती है, जो श्रीमानमंदिर द्वारा संचालित बड़े-बड़े दिव्य सेवा-कार्यों का मूल शक्ति-स्रोत है अर्थात् सभी कार्य केवल आराधना-शक्ति से हो रहे हैं, अतः भक्तिमयी आराधना ही परमशक्ति है जो साक्षात् श्रीजी का ही स्वरूप है, जिसकी उपासना स्वयं रसिकशेखर श्यामसुन्दर करते हैं, इसलिए मानगढ़ उसी आराधना-शक्ति श्रीजी का मानभवन है |

श्रीमद्भागवत माहात्म्य कथा

(अतिअधमोद्धारिणी 'भागवत-कथा')

श्रीबाबामहाराज द्वारा कथित श्रीभागवतजी (२२/२/१९८५)

नारदजी की बात सुनकर सनत्कुमारजी बोले कि देखो भाई सभासदो ! तुम सब लोग कथा की महिमा जाननो चाहौ तो याके बारे में बड़ी विशेष बात ये है कि जा मनुष्य ने सदा पाप ही किये हैं और सदा दुराचार ही दुराचार कियो है अथवा जो आदमी क्रोध की अग्नि में जल रह्यो है, कुटिल है, कामी है तो वे सब भागवत की सप्ताह कथा से निश्चित पवित्र है जायें, यामे कोई शंका नांय है | जो सत्य से रहित है, माता-पिता को भी दूषित करवे वारो है, तृष्णा से भर रह्यो है, वर्णाश्रम के सब धर्मन से रहित ह्वै चुको है, दम्भी है, पाखंडी है, पजरैला (ईर्ष्यालु) है, मत्सरी है, ये सब पापी जीव निश्चित रूप सों सप्ताह यज्ञ सों शुद्ध ह्वै जायें और जो पाँच महापाप होय हैं, इनको करवे वारो भी दुरत्यय माया से तर जाय | क्रूर, पिशाच की तरह बहुत से लोग निर्दयी होवें, दया तो उनमें होय नांय, व्यभिचार में डूबे भये हैं, या प्रकार शरीर से, वाणी से, मन से जितने भी प्रकार के पाप होवें, उनको करवे वारे सब पापियों कौ सप्ताहयज्ञ से निश्चित उद्धार ह्वै जाय | यहाँ तक कि

"परस्वपुष्टा मलिना दुराशयाः
सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते |"

(भागवतमाहात्म्य - ४/१४)

'परस्वपुष्टा' दूसरे के धन से जो खूब खा-खाके पुष्ट ह्वै रहे, यह बड़ौ भारी पाप है, हम लोग सोचेंगे कि कोई आदमी आय और चार पैसा भैंट कर जाये, ऐ बड़ा भारी पाप है | 'ब्रह्मस्वपुष्टा' - ब्राह्मण के हव्य, द्रव्य को हरण करके तो जो पुष्ट ह्वै रहे हैं, मलिन हैं, दुराशय हैं; इन सब लोगन की सप्ताह-श्रवण से सद्गति ह्वै जाए | ये बात सब सभा सुन रही थी और कहा कि अच्छा भाइयो ! हम तुम्हें आँखों देखी बात बता रहे हैं, सुनी हुई बात नहीं है, ये सच्ची घटना है तुंगभद्रा नदी है, वहाँ एक आत्मदेव नाम को भिक्षुक ब्राह्मण हो (क्योंकि ब्राह्मण को धर्म है - भिक्षा माँगना), जो बड़ो विद्वान हो, वैदिक कर्मकाण्ड 'कर्मन' में ऐसो निष्णात (कुशल) मानो कि जैसे सूर्य चमचमा रह्यो होय और वाकी बहू को नाम धुन्धुली हो, 'यथा नाम तथा गुण' जहाँ जाये धुन्धई-धुंध होय, वाकौ 'धुन्धुली' कहें; धुन्धुली को ये लक्षण होय – **'स्ववाक्यस्थापिका'** अपनी बात को स्थापित करना कि 'मेरी बात कैसे कट गयी, मेरी बात रहनी चाहिए', छोटी-छोटी बातन में हम लोग जो हठ करके अपने वाक्य की स्थापना करें तो यासों 'अहं' बढ़ै, जा स्त्री में ऐसे विचार 'वाक्य' होंय तो समझ लो कि धुन्धुली है | या लिये **"भगति पच्छ हठ नहिं सठताई |"** भक्ति में हठ नहीं करनों चाहिए, जो भी भक्त है वाको धुन्धुली नहीं बननों चाहिए | धुन्धुली कौ स्वभाव बतायौ है **"स्ववाक्यस्थापिका नित्यं सुन्दरी सुकुलोद्भवा |**
लोकवार्तारता क्रूरा प्रायशो बहुजल्पिका |
शूरा च गृहकृत्येषु कृपणा कलहप्रिया ||"

(भागवतमाहात्म्य ४/१८,१९)

वो 'स्ववाक्यस्थापिका' थी, यद्यपि बड़ी सुन्दरी (मलूक) थी, अच्छे खानदान में पैदा भयी लेकिन बस अपनी ही बात को श्रेष्ठ मानती, हमारी बात कटनी नहीं चाहिये, याही प्रयास में रहती, व्यर्थ की बात में लगी रहती, बहुत बोलवे वारी हों, कलह बहुत करती, ये सब खराब-खराब लक्षण इनमें थे | दोनों 'पति-पत्नी' बहुत समय तक गृहस्थ में रहे परन्तु कोई संतान नांय भयी | संतान के अभाव में दुःखी भये तो फिर "आरत काहि न करे कुकरमू |" दान आरम्भ कर दियो कि कछु पुण्य हो जाये और हमाई इच्छा पूरी है जाए तो उन्होंने बहुत से दीनन के लिए गइया, पृथ्वी, स्वर्ण, कपड़ा दियौ, या तरह से लगभग आधो धन दान में दे दियौ किन्तु न पुत्र भयौ, न पुत्री भई, या दुःख से एक बार आत्मदेवजी अपने घर को छोड़कर वन में गये, दोपहरिया को समय है गयो, चलते-चलते एक तालाब के किनारे आकर बहुत दुःखी

उदास बैठ गये, वाही समय वहीं एक सन्यासी महाराज पधारे और उनको देखकर के आत्मदेवजी ने रोते हुए प्रणाम कियौ | वे यतिजी बोले कि अरे ब्राह्मणदेव ! क्यों रो रहे हो, तुम्हें कौन-सी चिन्ता है, तुम अपने दुःख को कारण बताओ हमें | ब्राह्मणदेव बोले कि हे मुनि ! मैं कहा बताऊँ अपनों दुःख, बिना पाप के दुःख या रोग नांय होय, पूर्व पाप सों हमें दुःख है कि जो हमारे पूर्वज हैं, पुत्र के बिना उनकी कहा गति होगी, हम ब्राह्मण देवताओं को बुलावें, सो देवता, ब्राह्मण कोई हमारी वस्तु ग्रहण नांय करें, धिक्कार है, जो प्रजाहीन है वा कुल को धिक्कार है | या प्रकार पुत्र-प्राप्ति कौ अत्यन्त हठ देखकर सन्यासी साधु नें एक फल दियौ कि याको खाने सों अवश्य एक पुत्र कौ जन्म होयगौ | आत्मदेव ब्राह्मण बहुत ही प्रसन्नता से घर आये और अपनी पत्नी धुन्धुली को वह फल दै दियौ लेकिन उसने अपने असत् स्वभाव के कारण वह फल गाय को दै दियौ, जाते कुछ समयांतराल में गाय ने गोकर्ण नामक परम भक्त को जन्म दियौ | बाद में महात्मा गोकर्णजी के ही उपदेश से पिता आत्मदेव कौ परम कल्याण भयौ हो |

☀ श्रीकृष्ण की महिमा ☀

भगवान् की कितनी बड़ी कृपा है कि हमें मनुष्य बनाया और कृपा करके अपना नाम, महिमा, लीला हमें दी? कैसे हैं श्रीकृष्ण? बहुत सुंदर श्रृंगार है, सिर पर मोर-मुकट है, गल बैजंती माला है जो नीचे तक लटक रही है । एक हिरनी बैजंती माला के साथ सटकर खड़ी है और श्रीकृष्ण की माला से कभी-कभी उसके कान छू जाते हैं । एक हिरनी श्रीकृष्ण के पास चली गई और पीताम्बर के नीचे खड़ी हो गयी तो पीताम्बर उसके ऊपर लहरा रहा है ।

आकर्ण्य वेनुरणितं.....प्रणयावलोकैः ॥

(भा. १०/२१/११)

गोपियाँ कहती हैं कि देखो इन हिरनियों का भाग्य, इनके पति भी साथ-साथ हैं । ऐसा क्यों कहा? बोलीं कि एक तो इनके पति हैं जो साथ-साथ हैं और इनको नहीं रोकते हैं, हिरनियों को अपने साथ लेकर आये हैं कि कृष्ण के दर्शन कर लो । एक हमारे पति हैं जो हमको रोकते हैं कि खबरदार, वहाँ जाने की जरूरत नहीं । हम पर कैसे-कैसे पहरे लगाते हैं ।

गोपियाँ कहती हैं कि देखो, हिरनियाँ श्रीकृष्ण की पूजा कर रही हैं और इनके पति सामने खड़े देख रहे हैं, वे पूजा कैसे कर रही है? क्या हिरनियाँ घण्टी हिलाती हैं? आरती करती हैं? कैसे पूजा करती हैं? गोपियाँ कहती हैं कि 'पूजा' घण्टी हिलाने या आरती करने को नहीं कहते हैं । जैसे कि एक पुजारी ने भोग लगाया । भगवान् ने देखा तो सुदर्शन चक्र से बोले कि आओ सुदर्शन, पुजारी ने १५ दिन पुराना लड्डु भोग लगाया है, तुम इसको काट दो । सुदर्शन जी बोले- नहीं महाराज ! मेरी धार चली जायेगी । इसको पूजा थोड़े ही कहते हैं । पूजा माने आपका भाव कैसा है? हिरनियाँ पूजा कर रही हैं, वे अपनी प्रेम भरी आँखों से, प्यार भरी चितवन से ऐसे देख रही हैं मानो पी जायेंगी । इनका ये ही छप्पन भोग है । प्रेम से देख लिया यानि पूजा हो गयी । पूजा एक भाव है, बाहरी क्रिया नहीं ।

श्रीकृष्ण रसामृत

(वेदोपनिषद-सार 'भागवत-रस')

व्यासाचार्या साध्वी मुरलिकाजी
(मानमन्दिरवासिनी, गह्वरवन, बरसाना द्वारा कथित 'श्रीमद्भागवत-कथा'(९/१/२०१४)

नारदजी ने भक्ति महारानी से कहा – (श्रीमद्भागवतमाहात्म्य २/३) "हे देवी ! जो लोग आपका आराधन करते (बुलाते) हैं, वे ठाकुरजी को अपने वशीभूत कर लिया करते हैं | तुम उनकी प्राणप्रियतमा हो, तुम उनकी निजशक्ति हो, इसलिए हे देवी ! तुम्हें तो शोक करना ही नहीं चाहिए, शोक क्यों करती हो, कृष्ण स्मरण करो तो तुम्हारा सब क्लेश दूर हो जायेगा | पूर्वकाल में तुमने भगवान् से आज्ञा ली थी कि हे प्रभो ! मेरे योग्य क्या सेवा है ? तब भगवान् ने कहा था कि जाओ - मेरे भक्तों का पोषण करो और उस समय उन्होंने तुम्हें ज्ञान, वैराग्य को पुत्र रूप में और मुक्ति को दासी के रूप में दिया था |" इसलिए "**अस बिचारि हरि भगत सयाने।**

मुक्ति निरादर भगति लुभाने ॥"

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड – ११९)

जो भक्त हैं, वैष्णव हैं, वे कभी मुक्ति रूपी दासी का भजन नहीं करते, वे तो ठाकुर जी की निज स्वरूपा शक्ति भक्तिमहारानी को ही भजते हैं | वे भक्ति को ही चाहते हैं, मुक्ति तो भक्तों की दृष्टि में त्याज्य है |

प्रभुता ही को सब भजें, प्रभु को भजे न कोय |
जो प्रभु को भजे, तो प्रभुता दासी होय ||

मुक्ति तो भक्तों की अपने-आप चाकरी करती है क्योंकि भगवान् ने ही यह विधान बनाया, भक्ति महारानी के लिए स्वयं भगवान् ने ही मुक्ति को दासी के रूप में दिया है | देवर्षि नारद जी ने भक्ति महारानी को समझाया है और उसके बाद फिर नारद जी ने प्रतिज्ञा कर ली –

"**तदा नाहं हरेर्दासो लोके त्वां न प्रवर्तये ||**

(भागवतमहात्म्य २/१४)

यदि मैंने इस कलिकाल में घर-घर में तुम्हारी प्रतिष्ठा न कर दी तो मैं भी श्रीहरि का भक्त नहीं हूँ | इस प्रकार नारदजी ने अपने दास भाव को दाँव पर लगा दिया और फिर ज्ञान, वैराग्य को जगाने का बहुत प्रयास किया | वेदध्वनि करते हैं, गीता पाठ करते हैं परन्तु उन दोनों का आलस्य दूर नहीं हुआ, नारद जी के सभी प्रयास निष्फल चले गये | अब नारद जी ने विचार किया कि मुझे कोई न कोई उद्यम, तपस्या करनी चाहिए और जब वह तप करने को हुए तो आकाशवाणी ने उनसे कह दिया – "हे देवर्षे ! आप चिन्ता न करें, आपका उद्योग सफल होगा, एक संत शिरोमणि महानुभाव आपको वह उद्यम बतायेंगे कि आपको कैसे यह अनुष्ठान करना चाहिए, कैसे ज्ञान, वैराग्य को युवावस्था की प्राप्ति होगी |" अस्तु, आकाशवाणी ने तो कह दिया लेकिन अब नारदजी बड़े असमंजस में पड़ गये, वे कौन-से संत हैं? कैसे बतायेंगे? क्या बताएँगे? कौन-सा अनुष्ठान है ? नारदजी को समझ में नहीं आया, वह सभी ऋषि-मुनियों से पूछने लगे, सब ऋषियों ने हाथ खड़े कर दिए और बोले – "अरे ! जिस साधन को योगियों के परम गुरु नारदजी नहीं जान पाए तो हम क्या हैं, उस साधन को हम कैसे बता पायेंगे ?" बहुत से संत नारदजी को देखकर ही अपना स्थान छोड़कर भाग जाते, बहुत से संत नारद जी को देखकर मौन होकर बैठ जाते, इस तरह कोई भी संत साधन न बता सका तो नारद जी ने फिर से तपस्या करने का विचार किया और जैसे ही तपस्या के लिए तैयार हुए, उसी क्षण सनकादिक मुनीश्वर वहाँ आ पहुँचे | जैसे ही सनकादिक मुनीश्वरों का दर्शन हुआ, नारद जी ने कहा –

"इदानीं भूरिभाग्येन भवद्भिः संगमोऽभवत्|

(श्रीमद्भागवतमाहात्म्य २/४५)

"मेरे बड़े भाग्य हैं, जो मुझे आपके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है |" परस्पर प्रणाम हुआ, नारद जी महाराज ने देखा कि मुनीश्वर आ गये हैं जो देखने में तो पाँच-पाँच वर्ष के

छोटे-छोटे बालक लगते हैं लेकिन इनका अखण्ड आराधनामय स्वरूप है - सदा सर्वदा कृष्ण नाम-संकीर्तन करते रहते हैं | भगवान् की कथा-कीर्तन ही उनका जीवन बन गया है | हम लोग अपना जीवन विषय भोगों को बना लेते हैं, इसीलिए उनकी प्राप्ति के लिए जीवन भर भटकते, दौड़-धूप करते रहते हैं लेकिन इन मुनीश्वरों का जीवन तो श्रीठाकुरजी का कथा-कीर्तन ही है | ये चार भैया हैं, एक कथा सुनाने के लिए बैठ जाता है तो तीन बैठकर सुनते हैं, फिर दूसरा सुनाएगा तो अन्य तीन श्रवण करेंगे, फिर तीसरा सुनाएगा तो अन्य तीन श्रवण करेंगे | इस प्रकार ये निरन्तर कथा श्रवण करते ही रहते हैं और यदि कोई दूसरा सुनाने वाला मिल जाये तो चारों ही श्रोता बनकर बैठ जाते हैं और कथा-रस का पान करते हैं | जैसे ही सनकादिक मुनीश्वरों ने नारदजी को देखा, परस्पर प्रणाम हुआ है | नारद जी ने मुनीश्वरों से वही प्रश्न कर दिया – "हे मुनिगणो ! वह कौन-सा साधन 'अनुष्ठान' है, जिसको करने से ज्ञान-वैराग्य की मूर्च्छा दूर हो तथा भक्ति का कष्ट दूर होकर उसका पोषण हो, उस साधन को कैसे करना चाहिए, कहाँ करना चाहिए ? आप कृपा करके बताएँ |" सनकादिक मुनीश्वरों ने कहा –

"मा चिन्तां कुरु देवर्षे हर्षं चित्ते समावह |"

(भागवतमाहात्म्य २/५३)

"अरे नारद जी ! आपको चिंता करना शोभा नहीं देता | चिन्ता करने की बात ही नहीं है क्योंकि जो उपाय हम आपको बताने के लिए जा रहे हैं, यह सुखसाध्य है, आप आराम से, सहज ही इसको कर लेंगे और भक्ति, ज्ञान, वैराग्य तीनों का क्लेश दूर हो जायेगा |" अभी इन मुनीश्वरों ने नारदजी से कहा था कि आपमें यह चिंता उचित प्रतीत नहीं होती किन्तु अब कहते हैं कि नारदजी आप जो चिन्ता कर रहे थे, वह बिल्कुल ठीक है | भक्ति की चिन्ता भक्त नहीं करेंगे तो फिर और कौन करेगा | भक्त का कर्तव्य है भक्ति की स्थापना करना | आपकी चिन्ता ठीक है लेकिन सहज में ये चिन्ता श्रीमद्भागवत ज्ञानयज्ञ के अनुष्ठान से दूर हो जायेगी, इसलिए भागवत ज्ञानयज्ञ का अनुष्ठान कराओ | नारद जी ने कहा कि महाराज यह कैसे सम्भव है? जब 'ज्ञान-वैराग्य' गीता पाठ तथा वेदध्वनि से नहीं जगे तो फिर भागवत-पाठ से ही इन्हें कौन-सा लाभ प्राप्त हो जायेगा | सनकादिक मुनीश्वर बोले – "नारदजी ! आप कैसी बात कर रहे हैं ?" (पूर्वकाल में नारदजी ने ही व्यासजी महाराज को भागवत बनाने की प्रेरणा दी थी और अब वे ही चक्कर में पड़ गये और कह रहे हैं कि भागवत-कथा से ज्ञान-वैराग्य कैसे जाग जायेंगे?) सनकादिक मुनीश्वरों ने कहा कि देवर्षे ! आप जानते हुए भी ऐसी बातें कर रहे हैं ? अरे ! श्रीमद्भागवतजी की कथा वेद-उपनिषद के सार से बनी हुई है | रस भेद होने के कारण इनके फल में भी भेद है, वेदोपनिषद अपनी जगह ठीक हैं किन्तु जैसे आम के वृक्ष में भी रस होता है लेकिन जब फल आता है तो उसमें विशेष रूप से रस आ जाता है | दूध में घृत रहता है, वही दूध जब जमकर दही बनता है तो उसे मथने पर मक्खन निकलता है फिर जब वह तपाया जाता है तो उसी दूध से निकलने वाले घृत का महत्त्व दूध से अधिक हो जाता है | गन्ने (ईख) में मिठास व्याप्त है किन्तु वही जब उससे अलग, उसके परिष्कृत रूप में 'चीनी-मिश्री आदि के रूप में' आती है तो उसमें ज्यादा मधुरता होती है | आम के पेड़ के छिलके को कोई कूटे, छाने-घोटे, फिर पिये, उसमें वह स्वाद नहीं आएगा किन्तु आम खा लो तो जो सम्पूर्ण वृक्ष का रस था, वह सब पी लिया | आम के पत्ते शाखा में वह स्वाद नहीं होगा जो कि उसके फल में होगा | वही दूध है, उसी दूध से घृत (घी) बनता है, उसी दूध को अगर आप आग में डालोगे तो आग बुझ जायेगी और उसी दूध का परिष्कृत रूप जब घृत के रूप में आयेगा, उस घृत को जब आप अग्नि में डालोगे तो अग्नि बढ़ जायेगी | वेद, उपनिषद तो कल्पवृक्ष की तरह हैं और उस कल्पवृक्ष का यह पका हुआ फल है - 'श्रीमद्भागवत '| नारदजी महाराज को संतोष हो गया और उन्होंने कहा कि अब मैं 'श्रीमद्भागवत ज्ञानयज्ञ' का अनुष्ठान करूँगा लेकिन इसके लिए कोई स्थान बताया जाय; क्योंकि ये बातें विशालापुरी में हो रही हैं ,इतने ऊँचे स्थान पर कथा सुनने कौन जायेगा और कौन वहाँ व्यवस्था बनाएगा | इसलिए भागवत सप्ताह यज्ञ की विधि में पहले ही कह दिया गया है कि ऐसी जगह कथा का अनुष्ठान हो ,जो स्थान श्रोताओं के लिए भी सुविधाजनक हो ,जहाँ आराम से लोग कथा श्रवण हेतु आ सकें ,बैठने का भी पर्याप्त स्थान हो |

श्रीमद्भगवद्गीता

(परम विज्ञेय 'परमात्म तत्त्व')

श्रीबाबामहाराज के सत्संग (१५,१६/१/२०१२) से संग्रहीत

द्वितीयोऽध्यायः

श्लोक – १३

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥

'अस्मिन देहे' - इस शरीर के भीतर, देही - जीव, हम लोगों को | जैसे शरीर में 'कौमार्य' - बालकपन, 'यौवन' - जवानी और 'जरा' - बुढ़ापा बदलता रहता है, उसी तरह से 'देहान्तरप्राप्ति'- दूसरा शरीर भी प्राप्त हो जाता है | 'धीरस्तत्र न मुह्यति' - धीर लोग इस विषय में मोह को प्राप्त नहीं होते हैं |

श्लोक – १४

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥

हे कौन्तेय ! विषयों के स्पर्श गर्मी-सर्दी तथा सुख-दुःख को देने वाले हैं, आने-जाने वाले हैं, क्षणिक हैं अतःउनको सहन कर लेना चाहिए | शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि तन्मात्राएँ होती हैं, इन्हीं से पाँच भूत (छिति, जल, पावक, गगन, समीर) बनते हैं | मात्राओं का स्पर्श ही शीत-उष्ण और सुख-दुःख देता है | मात्राओं के स्पर्श से ही गर्मी-सर्दी अथवा सुख-दुःख आदि का अनुभव होता है | 'आगमापायिनो' – आगम अर्थात् ये चीजें आती हैं और चली जाती हैं | गर्मी आती है, चली जाती है; जाड़ा आता है, चला जाता है; दुःख आता है, चला जाता है; सुख आता है, चला जाता है | हर चीज 'आगम' अर्थात् आने वाली और 'अपायी' अर्थात् जाने वाली है | इसलिए 'तांस्तितिक्षस्व' - उनको सह लेना चाहिए, भगवान् कहते हैं – हे भारत ! बस इसी को ज्ञान कहते हैं | **श्लोक – १५**

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥

ये चीजें जिसको दुःख न पहुँचावें, जैसे - सुख-दुःख, गर्मी-सर्दी आदि में आदमी व्यथा अर्थात् कष्ट पाता है, दुःखी होता है, जिसको ये चीजें व्यथा नहीं पहुंचाती हैं | यं पुरुषम्' - जिस पुरुष को, 'हे पुरुषर्षभ' - हे पुरुषों में श्रेष्ठ अर्जुन | सामान्य हो गया है दुःख-सुख जिसके लिए, क्यों, क्योंकि वह धीर हो गया है, ऐसा धीर बन गया है कि उसको कोई चीज दुःखी नहीं कर रही है, सुखी नहीं कर रही है, वही अमृतत्त्व को, अविनाशी पद को प्राप्त हो जाता है | मनुष्य जितना सुखी-दुःखी होता है, जितना उदास होता है, उतना ही कमजोर बनता है और मृत्यु की तरफ जाता है | धीर वही है जो सुखी-दुःखी नहीं होता है, व्यथा जिसको नहीं होती है, वह अमृतत्व को प्राप्त हो जाता है |

श्लोक – १६

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥

'न असतः भावः विद्यते' - असत् अर्थात् जो वस्तु मिथ्या है, उसका भाव अर्थात् रुकना सम्भव नहीं है | कथनाशय है कि मिथ्या वस्तु कभी रुकती नहीं है तथा 'न अभावः सत: विद्यते' - जो सत्य वस्तु है, वह कभी मिटती नहीं है, उसका अभाव नहीं होता है | असत् वस्तु का कभी भी भाव नहीं होता और सत् वस्तु का अभाव नहीं होता | सत्य वस्तु कभी मिटती नहीं है और असत् वस्तु कभी टिकती नहीं है | 'उभयोरपि' - दोनों का अन्तर विद्वान तत्वदर्शी लोग देखा करते हैं | इन्हें कैसे देखना चाहिए, सत्य वस्तु को ग्रहण कर लेना चाहिए और असत्य वस्तु को ग्रहण नहीं करना चाहिए, बस यही देखना है | सत्य वस्तु को पकड़ लेना चाहिए, छोड़ना नहीं चाहिए और असत्य वस्तु के प्रलोभन में नहीं आना चाहिए, चाहे वह कितनी भी आकर्षक और मूल्यवान क्यों न हो | मूर्ख लोग मिथ्या वस्तु के चक्कर में आ जाते हैं | किसी ने बहकाया

और बहक गए तथा सत्य वस्तु को छोड़ दिया तो ऐसा व्यक्ति तत्त्वदर्शी नहीं है | तत्त्वदर्शी तो सत् और असत् दोनों वस्तुओं का अन्तर देखा करता है | जैसे - सुनार केवल सोने को पकड़ता है, पीतल को नहीं पकड़ता, जौहरी हीरे को पकड़ता है, नकली पत्थर को नहीं पकड़ता | ऐसे ही तत्त्वदर्शी लोग सत्य वस्तु को पकड़ लेते हैं, असत्य वस्तु के चक्कर में नहीं आते हैं लेकिन संसार में लोग तत्त्वदर्शी नहीं हैं, वे असत्य वस्तु के द्वारा मोहित हो जाते हैं, ऊपरी चमक-दमक से प्रभावित होकर असली वस्तु को छोड़ देते हैं | इस सम्बन्ध में एक सत्य घटना है कि किसी व्यक्ति ने दिल्ली से बहुत बढ़िया जूते खरीदे और घर ला करके उसने दो दिन पहने तो वे नकली जूते निकले, ऊपर से उन पर इस प्रकार पॉलिश कर दी गयी थी कि देखने में वे बिल्कुल नए और आकर्षक प्रतीत होते थे किन्तु दो दिन में ही वे जूते टूट गये | इस प्रकार बाजार में ऐसी ही बहुत-सी नकली चीजें मिलती हैं, नकली सोने के गहने बिकते हैं, वे असली सोने से ज्यादा चमकते हैं तो लोग उसके प्रलोभन में आ जाते हैं | नकली हीरे होते हैं, वे असली हीरे से ज्यादा चमकते हैं, उसके चक्कर में लोग आ जाते हैं किन्तु तत्त्वदर्शी लोग सत्य वस्तु को पकड़ लेते हैं और असत्य को छोड़ देते हैं | यह श्लोक सब जगह काम में आएगा, व्यवहार और परमार्थ दोनों में लाभदायक सिद्ध होगा | जैसे - जो नकली साधु होते हैं, वे केवल ऊँची-ऊँची बात बनाया करते हैं, उनमें त्याग नहीं होता है, ऊपर से त्याग और सदाचार की बड़ी-बड़ी बात करते हैं | इसलिए लोग उनसे प्रभावित होकर उनके मायाजाल में फँस जाते हैं | एक बार किसी गाँव के एक छात्र से एक साधु ने सात सौ रुपये ले लिए यह कहकर कि मैं तुमको परीक्षा में पास करा दूँगा और पैसा लेकर चला गया तथा उस लड़के को ठग लिया | पाखण्डी साधुओं में ज्यादा दम्भ और ढोंग-ढांग होता है, ऊँची-ऊँची बात बनाते हैं कि 'हम ये कर देगें – वह कर देगें' जबकि वे होते मिथ्या (असत्) हैं | सत्य वस्तु का अभाव नहीं होता है और असत्य वस्तु का भाव नहीं होता है | तत्त्वदर्शी लोग दोनों का अन्तर देखते रहते हैं | यह श्लोक व्यवहार में भी काम आयेगा | कहीं भी सौदा खरीदने जाओ तो यह विचार करो कि यह नकली वस्तु है कि असली है, सत्य है कि असत्य है | किसी आदमी से बात करो तब भी यह विचार करो कि यह आदमी सत्य है कि असत्य है | ये बात तत्वदर्शी लोग विचार करते हैं, वे कभी भी ठगाई में नहीं आते हैं, मिथ्या वस्तु के प्रलोभन में नहीं आते हैं | सत्य वस्तु को ही पहचानकर उसे ग्रहण कर लेते हैं | परमार्थ में यह बहुत जरूरी है | आज भारत में हजारों लोग गुरु बनकर घूम रहे हैं, बात ऊँची-ऊँची करते हैं परन्तु उनकी स्थिति है - ऊँची दुकान और फीके पकवान | इसलिए यह श्लोक केवल परमार्थ ही नहीं अपितु व्यवहार में भी बहुत काम देता है | जैसे - दुकान से कोई सामान खरीदने जाओ तो बाजार में प्रायः चीजें नकली मिलती हैं, मीठा तक नकली मिलता है, यहाँ तक कि नमक भी नकली मिलता है, इसलिए सत् और असत् दोनों का विवेक हर जगह रखना आवश्यक है |

श्लोक – १७

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥

'अविनाशि तु तद्विद्धि' – अविनाशी उसको जानो, 'येन सर्वमिदं ततम्' - जिसके द्वारा यह संसार फैला है या बनाया गया है अर्थात् भगवान् अविनाशी हैं, उन्होंने ही इस संसार को बनाया है | बनाने वाला अविनाशी और अव्यय है | 'अस्य अव्ययस्य विनाशं कश्चित् न कर्तुमर्हति' - जो अव्यय, अविनाशी है, उसका विनाश संसार में कोई नहीं कर सकता | जैसे - ईश्वर अविनाशी है, उसका विनाश संसार में कोई नहीं कर सकता |

सम्पूर्ण त्रिलोकी के विषय भी एक जीव को तृप्त नहीं कर सकते, त्याग ही जीव को तृप्त कर सकता है ।

समर्पण का स्वरूप

समर्पण एक ऐसा अमोघ अस्त्र है, जिससे अनन्तकाल के दुष्कृत एक क्षण में जल जाते हैं किन्तु वह समर्पण अध्यात्म चित्त से होना चाहिए। अध्यात्म चित्त का समर्पण क्या है, यह भागवत जी में प्रह्लाद जी ने बताया है, जब उन्होंने नृसिंह भगवान् की स्तुति की है तब कहा है –

विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखात् श्वपचं वरिष्ठम् ।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ-
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥

(श्रीमद्भागवत ७/९/१०)

हे नरहरे ! यदि बारह गुणों से युक्त ब्राह्मण है और भगवान् से विमुख है तो उससे भगवद्भक्त चाण्डाल श्रेष्ठ है, कैसा चाण्डाल ? **'मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थप्राणम्'** जिसने मन, वचन, चेष्टाएँ, धन-सम्पत्ति आदि, यहाँ तक कि प्राण भी भगवान् को अर्पित कर दिए हैं।

'समर्पण' इसको नहीं कहते कि केवल हमने वाणी से कह दिया कि सब कुछ प्रभु तेरा ही है | जब हमारा मन, हमारी वाणी, हमारी सम्पूर्ण चेष्टाएँ, 'अर्थ' यानि जितनी भी हमारे पास धन-संपत्ति है और प्राण – ये पाँच चीजें कृष्णार्पित हों तो वह सच्चा समर्पण है। ये नहीं कि हमने ५०० रुपये अर्पण कर दिए तो हो गया समर्पण; समर्पण तो तब होता है जब मन प्रभु के चरणों में सदा रहे, वाणी केवल उनका ही गुणगान करे, इन्द्रियाँ केवल उनके ही कार्य में लगी रहें, जितनी क्रियायें हैं, वे भगवान् के लिए हों, अर्थ जो अपने पास है और प्राण, ये सब भगवान् के लिए अर्पित हों। अगर ऐसा समर्पण है तो वह चाण्डाल स्वयं तो पवित्र होता ही है, अपने कुल को भी पवित्र कर देता है और मान (अहम्) की भावना रखने वाला ब्राह्मण स्वयं ही पवित्र नहीं होता है तो दूसरों को क्या पवित्र करेगा ? अतः प्रह्लादजी के कहने का तात्पर्य यह है कि केवल समर्पण के कारण ही चाण्डाल द्वादश गुणों से युक्त ब्राह्मण से भी श्रेष्ठ बन जाता है। इसीलिये समर्पण की बड़ी महिमा शास्त्रों में बताई गयी है | गीताजी में भी भगवान् ने अर्जुन को बताया कि सच्चा समर्पण क्या है?

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्न्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥

(श्रीगीताजी ३/३०)

सभी कर्मों का अध्यात्म चित्त से समर्पण करो, अध्यात्म चित्त से मतलब होता है – 'अधि' माने भीतर और 'आत्मा' माने शरीर, मन, बुद्धि आदि क्योंकि संस्कृत शब्दकोष अमरकोश के अनुसार आत्मा शब्द के १२ अर्थ होते हैं। अतः अध्यात्म का अर्थ है कि भीतर का सारा जितना भी है उससे समर्पण करो, ये बाहर का संसार तो बहुत छोटा है, भीतर का संसार बहुत बड़ा है।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥

(श्रीगीताजी ३/४२)

स्थूल शरीर से आगे इन्द्रियाँ हैं, ये बड़ी सूक्ष्म हैं, फिर इन्द्रियों से आगे अर्थात् भीतर मन है और फिर उससे भी भीतर बुद्धि है; इसी को दूसरी तरह से कहें तो सबसे पहले अन्नमय कोष है, इसके भीतर प्राणमय कोष है, उसके भी भीतर है मनोमय कोष, फिर उसके भी भीतर है विज्ञानमय कोष और उसके भीतर आनन्दमय कोष है। इसलिए केवल शरीर का समर्पण, समर्पण नहीं है | भीतर का जितना भी अध्यात्म है – जैसे स्वभाव, गुण, कर्म, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि, इन सबका समर्पण होना ही वास्तविक समर्पण है | अध्यात्म चित्त से जब समर्पण होगा तो इससे मनुष्य निराशी 'आशाहीन' और निर्मम 'ममता रहित' हो जायेगा। `निराशी' का अर्थ है कि कोई कामना पैदा ही नहीं होगी क्योंकि जब मन ही भगवान् को समर्पित हो गया तो अब कौन-सा मन है जो लड्डू-पेड़े की इच्छा करेगा अथवा संसार का चिंतन करेगा। अनन्य कृष्णप्रेमिकाएँ ब्रजगोपियों ने श्रीउद्धवजी से कहा था –

ऊधो ! मन न भये दस-बीस ।
एक हुतो सो गयो स्याम सँग को अवराधै ईस ॥

जब मन समर्पित हो गया श्रीश्यामसुन्दर में तो फिर मन बाहर क्यों आयेगा लड्डू खाने, भोग भोगने, पैसा इकट्ठा करने; इसलिए अध्यात्मचित्त से समर्पण करना चाहिए अर्थात् मन का समर्पण करना चाहिए, इन्द्रियों का समर्पण करना चाहिए, बुद्धि का समर्पण करना चाहिए और अपनी अहंता का समर्पण करना चाहिए। सुतीक्ष्णजी ने मानसजी में कहा है –

अस अभिमान जाइ जनि भोरे।
मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

(श्रीरामचरितमानस, अरण्यकाण्ड -११)

इसको कहते हैं - अहंता का समर्पण | जब अहंता का समर्पण कर दिया तो फिर वह (समर्पण करने वाला) किसी का बाप नहीं, किसी की माँ नहीं, किसी का पति नहीं, किसी की स्त्री नहीं है। अहंता के समर्पण में केवल वह 'प्रभु का सेवक' है और कुछ नहीं है। जैसे - लक्ष्मणजी ने भगवान् श्रीराम से कहा था –

गुर पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी॥

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड - ७२)

लक्ष्मण जी ने जो कहा तो यह अहंता का समर्पण हो गया। जब अहंता समर्पित हो गयी तो फिर न संसार में कोई मित्र रहा, न शत्रु रहा, कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा किन्तु अध्यात्म चित्त का समर्पण कोई खेल नहीं है। भगवान् ने भी गीता में कहा – दो प्रकार के समर्पण होते हैं – एक द्रव्य समर्पण और एक क्रियायों का समर्पण। द्रव्य समर्पण क्या है?

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(श्रीगीताजी ९/२६)

पत्र-पुष्प-फल या जल, जो कुछ भी द्रव्य हो, तुम उसे भगवान् को समर्पित कर दो, इसको 'द्रव्य समर्पण' कहते हैं | दूसरा है - क्रिया समर्पण – **यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।**
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

(श्रीगीताजी ९/२७)

तुम जो कुछ भी क्रिया करते हो, अच्छी हो या बुरी; समस्त क्रियाओं को भगवान् को समर्पित कर दो, फिर समर्पण के बाद ये नहीं कि हमारा काम नहीं बना, हम हार गए। समर्पण के बाद जो मनोनुकूल फल की इच्छा करता है तो फिर उसका समर्पण भगवान् में नहीं है, उसका समर्पण कर्मफलों में है। जैसे - मान लीजिए हम लड़ाई लड़ रहे हैं और हार गए, हार हमको बुरी लगी तो हार बुरी क्यों लगी? क्योंकि हमारा समर्पण कर्मफल में था, भगवान् में नहीं था। किसी कार्य में कोई हानि हुई तो उसका दुःख क्यों हुआ? क्योंकि समर्पण हमारा फल में था, भगवान् में नहीं। यदि समर्पण भगवान् में होता तो चाहे हानि होती या लाभ, दोनों ही अवस्थाओं में यह समझ लेते कि भगवान् जो कर रहा है, ठीक कर रहा है। इससे सुख-दुःख, लाभ-अलाभ सब समान हो जाता। समर्पण करने में इसीलिए भगवान् ने सबसे पहले गीता में फलासक्ति का निषेध किया। फलासक्ति के रहते हुए समर्पण नहीं होगा और न निष्काम भक्ति आयेगी।

आप साधना चैनल पर प्रातः०६ :४० से पूज्यश्री रमेश बाबाजी महाराज
एवं प्रातः ०७ :०० बजे से ब्रजबालिका मुरलिकाजी का नित्य सत्संग देख सकते हैं |

श्रीराधासुधानिधि

(युगलरसमय यमुना-लीला)

श्रीबाबामहाराज के सत्संग (३/ ५/१९९८) से संग्रहीत

ब्राह्मणपत्नियों की श्रीश्यामसुन्दर में भोलेपन (सरल-सहज-सरस स्वभाव) की निर्मल प्रीति देखकर कर्मकाण्डनिष्ठ याज्ञिक ब्राह्मणों ने कहा –

नासां द्विजाति संस्कारो न निवासो गुरावपि |
न तपो नात्ममीमांसा न शौचं न क्रियाः शुभाः ||
अथापि ह्युत्तमश्लोके कृष्णे योगेश्वरेश्वरे |
भक्तिर्दृढा न चास्माकं संस्कारादिमतामपि ||

(श्रीभागवतजी १०/२३/४२,४३)

'इन स्त्रियों में ब्राह्मणपने का कोई संस्कार नहीं है, न इन्होंने कभी गुरुकुल में निवास किया, न कोई तपस्या इन्होंने की, न आत्मचिंतन किया और कोई पवित्रता भी इनमें नहीं है | इनमें कोई शुभ क्रिया भी नहीं है, फिर भी ये हमसे श्रेष्ठ हैं क्योंकि श्रीकृष्ण में इनकी स्वाभाविकी सुदृढ़ प्रेममयी भक्ति है |'

इस प्रकार से नरसीजी ने ये सब बातें निर्भीकतापूर्वक राजसभा में कहकर वहीं पर नाम-संकीर्तन करना आरम्भ कर दिया | उस राजसभा में एक व्यक्ति बैठा था, जिसने देखा था कि नरसीजी की पुत्री के भात में आसमान से सोने की वर्षा हुयी थी | उसने राजा से कहा – "बादशाह! मैंने स्वयं अपनी आँखों से यह चमत्कार देखा है कि नरसीजी जब भात भरने गए थे तो आसमान से अपार स्वर्ण-वर्षा हुई थी | नरसीजी ने तो भगवान् को अपनी मुट्ठी में कैद कर रखा है |" नरसीजी के भक्तिमय प्रभाव को सुनकर राजा उनके चरणों में गिर पड़ा |

भक्त नरसीजी की कथा कहने का आशय यह है कि श्रीराधाकृष्ण की लीला के रस को सांसारिक विषयासक्त लोगों के लिए समझना अत्यंत कठिन है, इसलिए वे बहिर्मुखी विषयी लोग 'महारास आदि रसमयी लीलाओं में नृत्य-गान करने वाले सच्चे रसिक भक्तों' का अनादर, निन्दा आदि करने लग जाते हैं, लेकिन मान-सम्मान व आत्मप्रशंसा की कामना से सर्वथा शून्य इन विशुद्ध भक्तों पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है अपितु अति निःशंक व निडरतापूर्वक उन कृष्णाराधकों की नृत्य-गाननिष्ठा नित्य-निरन्तर बढ़ती रहती है |

देह-गेहादि में आसक्त लोगों को संसार का भय हमेशा भयभीत किए रहता है कि अमुक व्यक्ति हमारी निंदा कर देगा तो समाज में हमारी प्रतिष्ठा नष्ट हो जाएगी अथवा अमुक व्यक्ति हमारी मानहानि कर देगा तो क्या होगा, ये सब चीजें दिखाती हैं कि हम भगवान् को बड़ा नहीं मानते अपितु दुनिया को बड़ा मानते हैं, दुनिया के लिए हम भगवान् को भी छोड़ सकते हैं लेकिन भगवान् के लिए दुनिया को नहीं छोड़ सकते, ये हमारी चोरी है, कमजोरी है, इसे सर्वथा दूर करने पर ही अविचल भक्ति हृदय में आयेगी | श्रीजी की वसनांचल लीला का प्रसंग चल रहा है | युगल सरकार का लीला-रस समझना बहुत कठिन है, श्रीराधासुधानिधि के प्रथम श्लोक की व्याख्या में वसनांचल का अर्थ चल रहा है, जिसमें श्रीजी के अंचल की हवा को प्राप्त कर श्रीकृष्ण धन्यातिधन्य हुए | रसिक महापुरुषों ने श्री जी के अंचल का प्रसंग कई जगह लिखा है जैसे वन विहार में, रास में, नृत्य में, बैठते समय, विलास में, शयन में, टोना-टोटका में, इस प्रकार बहुत जगह अंचल का प्रयोग होता है | अंचल के प्रसंग का सूरदासजी के शब्दों में वर्णन हुआ है कि श्रीजी यमुनाजी से लौट रही हैं और श्रीश्यामसुन्दर रास्ते में श्रीलाड़िलीजी की छटा देखते-देखते चल रहे हैं | श्रीराधामाधव की यमुना-लीला का वर्णन परम रसिक श्रीव्यासजी ने भी किया है – "**चलो मन कालिंदी के तीर |**" ध्यान करो, निर्मल यमुना का जल छल-छल करता हुआ बह रहा है | राधामाधव का दर्शन कर यमुना आनन्द से बहुत उछल रही है | व्यासजी इस छटा का वर्णन करते हैं कि आज यमुनाजी बहुत प्रसन्न हैं, क्यों ? क्योंकि श्रीराधामाधव उनके तट पर क्रीड़ारत हैं |

"जहाँ विहरत नागरि अरु नागर, सुन्दर स्यामल गौर शरीर ||" श्यामसुन्दर की नीली कान्ति यमुना जी में अलग चमक रही है और श्रीजी की गौर कान्ति यमुना जी में इस प्रकार पड़ रही है कि लगता है यमुना भी गोरी हो गई है | यमुना जी के तट पर जो कुंजें हैं, वहाँ पर राधामाधव की लीला हो रही है |

मग-मग मिलत कदम्ब कदम्बिनी, पग-पग कुञ्ज कुटीर |

वृन्दावन का ध्यान करो, दिव्य वृन्दावन की शोभा का यहाँ वर्णन है | 'मग' माने चाहे जिस रास्ते से जाओगे, फूले–फूले कदम्ब मिलेंगे, लाखों फूल मिलेंगे, इतने फूल मिलेंगे कि लगता है कि वृक्ष को रोमांच हो गया है | राधारानी का दर्शन करके वृक्ष को रोमांच भी होता है | कदम्ब के वृक्ष रोमांच के द्वारा अनेकों पुष्प गिरा रहे हैं | ऊँचे-ऊँचे कदम्ब वृक्ष हैं, उनके नीचे कुंजें बनी हुयी हैं | विशाल कुंजों की कुटिया अत्यंत सुन्दर प्रतीत होती हैं | हर रास्ते पर कदम्ब वृक्ष हैं और प्रत्येक पग पर कुंजें निर्मित हैं, असंख्य कुंजें हैं | 'मधुरातिमधुर शब्द' गुंजायमान हो रहे हैं | यमुना की लहरें अधिकाधिक उठ रही हैं, क्यों ? इस भाव का वर्णन श्रीमद्भागवत में भी किया गया है – श्रीयमुना सोचती है कि श्रीराधामाधव की चरण रज उड़कर मेरे पास आ जाये और मैं उसे चूम लूँ |

बर्हिणस्तबकधातुपलाशैर्बद्धमल्लपरिबर्हविडम्बः ।
कर्हिचित् सबल आलि स गोपैर्गाः समाह्वयति यत्र मुकुन्दः ॥
तर्हि भग्नगतयः सरितो वै तत्पदाम्बुजरजोऽनिलनीतम् ।
स्पृहयतीर्वयमिवाबहुपुण्याः प्रेमवेपितभुजाः स्तिमितापः ॥

(श्रीमद्भागवत १०/३५/६, ७)

यमुना अपनी भुजाओं को उठाकर श्यामसुन्दर की चरण रज माँग रही हैं, जैसे कोई स्त्री अधीर होकर अपनी भुजाएँ उठाकर पति से याचना कर रही हो, वैसे ही यमुना भी राधामाधव के चरणों में लगी हुयी रज को माँग रही हैं कि यह वृन्दावन की वायु राधामाधव की चरण रज मुझे दे दो| श्रीमद्भागवत के इसी भाव को व्यास जी एक पंक्ति में कहते हैं – **उमगति लहर-लहर चूमन को, ब्रज रज होय अधीर |**

गिरधर के रंग रांची यमुना, है गई श्यामल नीर ||

यमुना कृष्ण प्रेम में साँवली हो गई | अंतिम पंक्ति में व्यासजी 'श्रीयमुनाजी' से प्रार्थना करते हैं - हे यमुने ! हे कृष्णप्रिये !! हे रासेश्वरी श्रीजी की सहचरी !!! तुम हमारे ऊपर दया करो |

कृष्ण प्रिया रसरास सहचरी, हरो व्यास भव पीर ||

युगलरस में निमग्न श्रीयमुनाजी की मनोहारी दिव्य छटा है, यहाँ रसमयी युगललीला हुई -

गागरि नागरि जल भरि घर लीन्हे आवै | सखियन बीच धरयो घट सिर पर, तापर नयन चलावै ||

श्रीजी नेत्रों को चला रही हैं, चपल दृष्टि से देख रहीं हैं कि श्री कृष्ण किधर हैं ? जब दिखाई पड़े तो देखकर लज्जा से मुंह मोड़ लिया जैसे देख ही नहीं रही हैं | नेत्र एक जगह नही हैं, श्यामसुंदर को देखकर, मुख मोड़कर दूसरी ओर कर लिया-

ढुलत ग्रीव लटकति नथ बेसर, मंद-मंद गति आवै |

बेसर लटक रही है, ग्रीवा मंद-मंद हिल रही है |

भ्रकुटि धनुष कटाक्ष बाण मानो, पुनि-पुनि हरिही चलावै | गागरी नागरी जल भर .....

नैनों की चितवन से कभी-कभी वृषभानुनंदिनी नन्दनंदन की ओर देखती हैं, उस चितवन से घायल होकर ये चितचोर अपने को भूल जाते हैं | ये कौन से श्रीकृष्ण हैं, ये वे श्रीकृष्ण हैं जिनके सौन्दर्य को देखकर कामदेव भी मूर्छित हो जाता है | सारे संसार को मूर्छित करने वाला कामदेव जिन श्रीकृष्ण की रूप माधुरी को देखकर मूर्छित हो जाता है,उन श्रीकृष्ण को भी अनंग रंग में रंगने वाली है श्रीराधारानी की चितवन | "जाको निरखि अनंग अनंगत" – जिनको देखकर अनंग भी अनंग हो जाता है "ताहि अनंग बढ़ावै" – जिस प्रकार श्रीसुधानिधि के प्रथम श्लोक में उल्लेख है कि श्रीजी के वसनांचल की वायु का स्पर्श पाकर श्रीकृष्ण धन्यातिधन्य हो गये – "धन्यातिधन्य पवनेन कृतार्थमानी |" सूरदासजी कहते हैं कि वैसे ही राधारानी की अनुपम छटा का अवलोकन करके श्यामसुन्दर परम धन्य हो गये |

सूर श्याम प्यारी छवि निरखत आपुहि धन्य कहावै ||

श्रीराधारानी आ रही हैं, सुविशेष सुशोभनीय अद्भुत छटा है – **गागरि नागरि लिए पनघट ते, चली घरहि को आवै | ग्रीवा डोलत लोचन लोलत, अलकें चितहि चुरावै ||**

उनकी ग्रीवा हिल रही है, नेत्र चंचल हैं – **छिटकत चलै मटकि मुख मोरै, बंकट भौंह चलावै |**

गोपी-गीत

(कल्मष-कर्षक 'कृष्ण')

श्रीबाबामहाराज के सत्संग (१,३/११/१९९५) से संग्रहीत

बड़े-बड़े आचार्यों के साथ भी श्रीठाकुरजी प्रत्यक्ष बोलते व प्रेममयी लीलायें करते थे | गोस्वामी विट्ठलनाथजी भोग रखते थे तो श्रीनाथजी उसे साक्षात् पाते थे | स्वामी हरिदास जी बिहारी जी के समक्ष भोग रखते थे तो बिहारीजी भी प्रकट होकर ग्रहण करते थे | यह सब प्रेम-भावनाओं पर निर्भर करता है, हमारी भावनाओं में सच्चाई होना चाहिए | भावनाओं में सच्चाई तभी होती है जब अन्य आसक्तियाँ छूट जाती हैं, जैसा कि शुकदेवजी ने भागवत में कहा है –

यत्रानुरक्ताः सहसैव धीरा व्यपोह्य देहादिषु सङ्गमूढ़म् |
व्रजन्ति तत्पारमहंस्यमन्त्यं यस्मिन्नहिंसोपशमः स्वधर्मः ||

(भागवत १/१८/२२)

जब तुम्हारा भगवान् में अनुराग हो जायेगा तब देह-गेह आदि की जड़ आसक्ति अचानक सहज छूट जाएगी | सांसारिक आसक्तियाँ मूर्ख लोगों में ही होती हैं | असत् 'विनाशी' वस्तुओं में आसक्ति होने से बड़ी मूर्खता और क्या होगी | कृष्ण में अनुराग होने के बाद यदि कोई कहे कि हमारी संसार में आसक्ति थोड़ी-सी बच गयी है तो यह गलत बात है | जहाँ प्रकाश है, वहाँ अन्धकार नहीं रह सकता | ऐसा कभी नहीं हो सकता कि प्रकाश और अन्धकार एक साथ रहें | भगवान् में अनुराग होने के बाद शरीर, धन-संपत्ति, प्रतिष्ठा आदि की आसक्ति नष्ट हो जाती है, फिर भोग आदि तो बहुत तुच्छ वस्तुयें हैं | भोग तो इतनी नीची वस्तु है कि विहारिन देवजी ने कहा है कि जितने भोगी लोग हैं, ये सब कुत्ते हैं |

सूखो हाड़ हरषि गहै विमुख विषय घर बात |
लोहू अपने गाल कौ चाटि श्वान इतरात ||

मनुष्य भोग में बड़ा लिपटता चिपटता है, कामी कामिनी के साथ और कामिनी कामी के साथ बड़े खुश होकर लिपटते-चिपटते हैं | भगवान् से विमुख लोगों के घर ही विषय की बातें होती हैं | कुत्ता सूखी हड्डी लेता है और उसको चबाता है, उस हड्डी को चबाते-चबाते उसके दाँत में से खून निकलने लगता है क्योंकि हड्डी में तो खून है नहीं, वह तो सूखी हड्डी है | अब सूखी हड्डी चबाते समय कुत्ते के दाँत और मसूड़े से जो खून निकलता है तो कुत्ता समझता है कि यह खून हड्डी में से आ रहा है और उस खून को बड़े प्रेम से चाटता है जबकि वह खून उस हड्डी का नहीं है, वह खून तो उसके दाँत का है लेकिन मूर्ख कुत्ता समझता है कि इस हड्डी में से खून का रस निकल रहा है | वैसे ही मनुष्य जब भोग भोगता है तो पुरुष समझता है कि स्त्री में आनंद है और स्त्री समझती है कि पुरुष में आनंद है लेकिन नहीं, वे दोनों ही मूर्ख हैं, जैसे कुत्ते ने समझा कि हड्डी से खून निकल रहा है, वैसे ही पुरुष समझता है कि रस स्त्री में है, स्त्री समझती है कि रस पुरुष में है | नहीं, मनुष्य के ही शरीर का अंश – हड्डी, खून, मेद, माँस, मज्जा का सार अंश जो वीर्य है, तेज है, वह भोग में निकलता है, इससे अपना ही नाश होता है और पुरुष मूर्खता से समझता है कि स्त्री में रस है और स्त्री सोचती है कि पुरुष में रस है | इसीलिए भोगी को कुत्ता कहा गया है |

मूरख छाँड़ि वृथा अभिमान |
रे मन मूढ़ बचन सुन मेरो तजि सतसंग भ्रमत विषयन में जा बिधि मरकट श्वान ||

बन्दर या कुत्ते की तरह मनुष्य की हालत है |

छिन भर बैठि न सुमिरन कीन्हो जासों होय कल्यान |
रे मन मूढ़ कह्यो सुनि मेरो मेरी कही तू मान ||
नारायण ब्रजराज कुँवर सों दौड़ि करो पहचान |
अवसर बीति चल्यो है तेरो दो दिन का मेहमान ||
धवल धाम धन गज रथ सेना नारी चन्द्र समान |
अन्त समय सब तजि के मूरख जाय बसे शमशान ||
भूप अनेक भये पृथ्वी पर रूप तेज बलवान |
कोई न बचो या काल बली सों मिट गये नाम निशान ||

शुकदेवजी ने कहा कि विषयों की आसक्ति, शरीर की आसक्ति करना मूर्खों का काम है | अगर कृष्ण-प्रेम तुम्हारे में आ गया तो सारी आसक्तियाँ समाप्त हो जायेंगी और तब मनुष्य वहाँ पहुँचता है जिस भक्ति की, जिस पद की बड़े-बड़े परमहंस

लोग आशा करते हैं, इच्छा करते हैं और वहाँ पहुँचकर सदा के लिए उसको शांति मिल जाती है |

यह प्रणति (शरणागति) की बात है, जैसा कि गोपियों ने कहा है- **प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् |**
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ||

(भागवत १०/३१/७)

श्रीकृष्ण की प्रणतपालिता गोपीजन कह रही हैं कि कृष्ण का 'विरद' है - शरणागत के पाप-ताप को नष्ट करके उसकी रक्षा करना | 'विरद' का अर्थ होता है - प्रतिज्ञा भरा हुआ व्रत | श्यामसुन्दर शरणागत की रक्षा करते हैं तो उसके पापों को भी नष्ट करते हैं | गोपियों ने कृष्ण से कहा – 'प्रणतदेहिनां पापकर्शनम्' 'कर्षण' माने खींचना | कृष्ण अपने शरणागतों के पापों का कर्षण करते अर्थात् खींच लेते हैं | यहाँ खींचना इसलिए कहा गया क्योंकि हर जीव के कर्म अनंत हैं, वे इतनी गहराई में रहते हैं कि ईश्वर की सृष्टि को समझना असम्भव है | कर्म कहाँ रहते हैं, ये बड़ा विचित्र खेल है | अनंत कर्म चित्त में रहते हैं तो क्या चित्त इतना बड़ा है ? वस्तुतः यह माया शक्ति की विचित्रता है, जिसको जीव समझ नहीं सकता | 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुंसमर्थः' हैं भगवान् '**अघटितघटनापटीयसी**' उनकी माया है जो एक बिंदु में सिन्धु कर दे और सिन्धु को बिन्दु में कर दे |

'मसकहि करइ विरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन |
अस बिचारि तजि संसय रामहि भजहिं प्रबीन ||'

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड – १२२)

ये सब जीव कैसे समझ सकता है ? चित्त को कुछ विद्वानों ने अणु परिमाण माना, किसी ने मध्यम परिमाण माना किन्तु कोई समझ नहीं पाया | इस विषय में बहुत से मत-मतान्तर हैं | चित्त को समझने के लिए एक उदाहरण है, जैसे - आप बैंक में पैसा जमा करते हो तो आपको पासबुक मिलता है, उस पासबुक में सब लिखा रहता है कि कितने हजार रुपये जमा हैं, कितने निकाले गये हैं, कितने बाकी हैं | ऐसे ही हमारे जितने कर्म हैं, वे चित्त रूपी पासबुक में लिखे हुए हैं, यह मायाशक्ति की विचित्रता है; एक उदाहरण है इसको समझने के लिए- एक बार दो तपस्वी तपस्या कर रहे थे | नारदजी ने देखा कि ये लोग बहुत समय से तपस्या कर रहे हैं तो वह उनके पास गए | उन तपस्वियों ने नारदजी को प्रणाम किया और उनमें से एक तपस्वी ने कहा – "महाराज ! हमको बहुत समय हो गया तपस्या करते हुए, आप एक बार भगवान् से पूछ करके बताइए कि हमें उनका दर्शन होगा कि नहीं ?" दूसरे तपस्वी के पास नारदजी गए, उसने भी यही कहा – "प्रभो ! बहुत समय हो गया तपस्या करते हुए, हमें भगवान् का दर्शन होगा कि नहीं होगा ?" नारदजी ने कहा – "अच्छा, ये बात मैं भगवान् से पूछकर बताऊँगा |" नारदजी भगवान् के पास गये और उनसे पूछा कि उन तपस्वियों को आप कब दर्शन देंगे ? भगवान् बोले कि जिस वृक्ष के नीचे वे तपस्या कर रहे हैं, उस वृक्ष की जितनी पत्तियाँ हैं, उतने करोड़ वर्षों के बाद उन्हें हमारा दर्शन होगा | नारद जी ने आकर पहले वाले तपस्वी से कहा कि तुम जिस वृक्ष के नीचे तपस्या करते हो, इसमें जितनी पत्तियाँ हैं, उतने करोड़ वर्षों के बाद तुम्हें भगवान् का दर्शन मिलेगा | जीव तो जीव ही ठहरा बेचारा, वह तपस्वी नारदजी की बात सुनकर हिम्मत हार गया और बोला – "अरे राम–राम ! मारे गये तब फिर क्या होगा, इतने वर्षों से माला फेरने से क्या लाभ हुआ ? इतने करोड़ वर्षों बाद अब क्या होगा ?" इसके बाद नारदजी दूसरे तपस्वी के पास गए और उससे भी यही कहा कि अरे भाई ! तुम जिस वृक्ष के नीचे तपस्या करते हो, इसमें जितनी पत्तियाँ हैं, उतने करोड़ वर्षों बाद भगवान् का दर्शन होगा | नारदजी की बात सुनकर यह तपस्वी तो अत्यधिक आनंद के साथ नाचने लग गया और बोला कि भगवान् का दर्शन मुझे होगा तो सही, हम अनादिकाल से (अनादि अर्थात् इसकी कोई गिनती नहीं है, लाख, करोड़, अरब, शंख, महाशंख से भी आगे अनादि है) इस काल नदी के प्रवाह में बह रहे हैं | काल का प्रवाह भी अनंत है | आज तक कुछ भी नहीं हुआ परन्तु करोड़ों वर्षों के बाद भी मुझे भगवान् का दर्शन होगा, अवश्य होगा; इस प्रसन्नता में वह नाच रहा था तो उसकी प्रसन्नता, उसका धैर्य और उसके विश्वास से प्रसन्न हो करके भगवान् ने उतना करोड़ वर्षों का समय एक क्षण में बिता दिया और तुरंत उसी समय उसको दर्शन दिया | यह भगवान् की अनंत मायाशक्ति को समझने हेतु एक दृष्टान्त था |

भक्त के पास एक कवच होता है, वह कवच क्या है? भक्त हर परिस्थिति में संतुष्ट रहता है ।

नाम-महिमा

(नैष्कर्म्य से नामाराधन-सिद्धि)

श्रीबाबा महाराज के सत्संग (२१/५/२०१०) से संग्रहीत

श्रीभगवान् ने भागवत (११/२९/३४) में कहा कि मनुष्य जब समस्त कर्म मेरे लिए करता है तब उसका निवेदन (समर्पण) सच्चा होता है तथा वह मेरा प्यारा बन जाता है और तब वह अमृतत्त्व को प्राप्त होता है तथा मेरा स्वरूप ही बन जाता है –

मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे ।
तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो मयाऽऽत्मभूयाय च कल्पते वै ॥

परन्तु हम जैसे लोगों का कर्म अहंता के लिए होता है, अहंतावश हम द्वेष के आधीन हो जाते हैं परिणामतः बहुत शीघ्र हमारा मुख वक्रता को प्राप्त हो जाता है क्योंकि हमारे कर्म अहंता में जा रहे हैं | अगर हमारे कर्म भगवान् को समर्पित होंगे तो अहंता-ममता का संताप समूलतः नष्ट हो जाता है | जैसा कि भगवान् ने गीता में कहा –

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्नयस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥

(श्रीगीताजी ३/३०)

ऐसा भक्त मेरा प्रिय होता है | ऐसा नहीं कि पैसा मिल गया, सम्मान मिल गया तो खुश हो गए और किसी ने एक चाँटा मार दिया, अपमान कर दिया तो रोने लग गए अथवा रुष्ट हो गये | यह बीमारी है | भगवान् कहते हैं कि मेरा भक्त न तो हर्षित होता है, न शोक करता है और न ही इच्छा करता है, ऐसा भक्त मेरा प्रिय है क्योंकि उसके कर्मों का न्यास मेरे में हो रहा है | हम जैसे लोगों के कर्मों का न्यास अहंता में होता है | अहंता कभी फूलती है, कभी पिचकती है, कभी मुँह टेढ़ा करती है, न जाने क्या-क्या अहंता करती रहती है ? यदि भगवन्नाम की वास्तविक महिमा का ज्ञान हो जाए तो सारी विकृतियाँ समाप्त हो जाएँ | इसीलिए रामचरितमानस की चौपाई **"बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो....||"** में नाम को वेदों का प्राण कहा गया है | श्रीभगवान् कहते हैं कि शत्रु-मित्र, उदासीन आदि सभी में समबुद्धि रखो, सबमें मुझको ही देखो |

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥

(गीता ६/२९,३०,३१)

ऐसा भाव रखना बड़ा कठिन है | कोई गाली दे रहा है, उसमें कृष्ण को देखना कितना कठिन है | अगर उस अवस्था में भी तुम कृष्ण का दर्शन करोगे तो उनको जकड़ लोगे अर्थात् मजबूती से पकड़ लोगे जैसा कि श्रीभगवान् ने भागवत में कहा –

ये ब्राह्मणान्मयि धिया क्षिपतोऽर्चयन्त
स्तुष्यद्धृदः स्मितसुधोक्षितपद्मवक्त्राः ।
वाण्यानुरागकलयाऽऽत्मजवद् गृणन्तः
सम्बोधयन्त्यहमिवाहमुपाहृतस्तैः ॥

(भागवत ३/१६/११)

कोई भक्त गाली दे रहा है, मार रहा है तब भी उसकी पूजा करो | इसी प्रकार ब्रजवासियों के लिए कहा गया है - "**अवगुण अनेक भरे तऊ ब्रजवासी हैं** |" इस प्रकार की भावना रखने से ब्रजोपासना सिद्ध हो जायेगी, रसिक बन जाओगे और दोषदृष्टि रखने से रसिक नहीं बन पाओगे | सुधानिधिकार ने भी कहा है –

सद्योगीन्द्र सुदृश्यसान्द्ररसदानन्दैकसन्मूर्त्तयः
सर्वेप्यद्भुत सन्महिम्नि मधुरे वृन्दावने संगताः ।
ये क्रूरा अपि पापिनो न च सतां सम्भाष्य दृश्याश्चये
सर्वान्न्वस्तुतया निरीक्ष्य परम स्वाराध्य बुद्धिर्मम ॥

(श्रीराधासुधानिधि - २६४)

यह ब्रजोपासना का सर्वश्रेष्ठ आत्मस्वरूप श्लोक है | श्रीबाबा के गुरुदेव परम पूज्य श्रीप्रियाशरण महाराज जी इस श्लोक को प्रायः कहा करते थे | ब्रज की उपासना क्या

है, इसको समझो – ब्रज में जो भी प्राणी हैं, ऐसा भाव रखो कि वे योगीन्द्रों में भी सबसे बड़े हैं, आनंदरस घन मूर्ति हैं | कोई कहे कि ऐसा हम कैसे मान सकते हैं क्योंकि अमुक ब्रजवासी तो हमें गाली दे रहा था, डंडा लेके हमें मारने आया | सुधानिधिकार कहते हैं कि ब्रजवासी यदि क्रूर हैं, महापापी हैं, हत्यारे हैं, इतने बड़े पापी हैं कि उनका मुँह देखना, उनसे बोलना भी पाप है, उस स्थिति में भी उनमें यही भाव रखो कि यही राधा हैं, यही कृष्ण हैं - यही है ब्रज की उपासना | अब ऐसी किसकी छाती है जो ऐसा भाव रख ले | हम लोगों का मुँह तो जरा-सी बात में टेढ़ा हो जाता है तो क्या हम सच्चे ब्रजाराधक 'ब्रजोपासक' बन पायेंगे, क्या ऐसा व्यक्ति प्रेमीभक्त अथवा रसिक बन जाएगा, कभी नहीं बनेगा; वह तो सदा निंदा, राग-द्वेष आदि का रस ही पीता रहेगा, ये सब विकर्म हैं, इन्हें छोड़ना पड़ेगा, इसी को नैष्कर्म्य कहते हैं | महावाणी में कहा गया है –

"विधि-निषेध के जे जे कर्म,
तिनको त्याग रहे निष्कर्म |"

निषेध का कर्म जैसे - द्वेष आदि को छोड़ो | नैष्कर्म्य पर स्थित हो जाओ तब रस की सिद्धि होगी | किसी ग्रन्थ में भी देख लो, इन विकृतियों के रहते न रस की, न प्रेम की और न ही भक्ति की प्राप्ति होगी, न ही नाम की महिमा का फल मिलेगा बल्कि तुम नाम को नामाभास बना दोगे | झूठे ही कोई कहता है कि हमने भागवत-रामायण आदि का पाठ कर लिया, कोई कहता है कि हमने रसिकों की वाणी हितचतुरासी, केलिमाल, महावाणी आदि का पाठ कर लिया; अरे ! इनसे कुछ नहीं होना है, इससे न रस मिलेगा और न प्रेम मिलेगा, निषेध के कर्म तुमने छोड़े नहीं, नैष्कर्म्य प्राप्त हुआ नहीं तो तुम्हारा सारा पाठ व्यर्थ हो जाएगा | नाम-संकीर्तन करोगे तो वह नामाभास हो जाएगा | इसीलिए नाम का जो वास्तविक स्वरूप है, जैसा कि प्रस्तुत प्रकरण में तुलसीदासजी ने कहा –

"अगुन अनूपम गुन निधान सो |"

अर्थात् नाम गुणातीत है, उसका अनुभव हमको नहीं हो रहा है, नाम अगुण (प्राकृतिक गुण सत्, रज, तम से रहित दिव्य गुणमय) है लेकिन हमको तो सांसारिक गुणों से युक्त वस्तुओं की अनुभूति हो रही है | नाम अगुण है, अनुपम है, गुण निधान है, जितने भी गुण भगवान् में हैं, वे सभी उनके नाम में भी हैं | यही बात चैतन्य महाप्रभु ने भी कहा है –

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमित: स्मरणे न काल: |
एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुराग: ||

जितनी अनन्त शक्तियाँ भगवान् में हैं ,वे उनके नाम में भी हैं **अगुन** ' इस प्रकार श्रीरामचरिमानस की चौपाई | **'अनुपम गुन निधान सो** में नाममहिमा के लिए प्रयुक्त - | का यह अर्थ हुआ है 'गुणनिधान' शब्दनाम- महिमा का प्रसंग बड़ा सूक्ष्म और गंभीर है क्योंकि नाम के बारे में संतों ने जो कुछ कहा है, वह वैज्ञानिक-दृष्टि से भी बिल्कुल सही है ,भगवन्नाम से ही सृष्टि का विकास हुआ, इसे पुराणों में और वेदों में भी कहा गया है ' वेद में प्रणव | ॐ' को कहा गया है, छान्दोग्यउपनिषद में अन्य श्रुतियों में ,भी बताया गया है, माण्डूक्योपनिषद में विशेष करके कहा गया है | भारतवर्ष के ऋषियों का भी मत है कि 'प्रणव' से संसार बना और भक्त उसी को भगवन्नाम से मानते हैं इसमें | वैज्ञानिकता भी है, इसीलिये गोस्वामी तुलसीदास जी ने भगवान् के नाम की महिमा के बारे में लिखा है –

बंदउँ नाम राम रघुवर को | हेतु कृसानु भानु हिमकर को ||
बिधि हरि हरमय बेद प्रान सों | अगुन अनूप म गुन निधान सों ||
(रामचरितमानस, बालकाण्ड – १९)

जैसे दुःख बिना बुलाये आता है, उसी तरह सुख भी जितना तुम्हें मिलना है, बिना माँगे अवश्य मिलेगा । प्रयत्न करो तो केवल उसी के लिए करो जिसको अब तक प्राप्त नहीं कर सके हो । संसारी सुख के लिए प्रयत्न करके अपनी जिन्दगी को मिट्टी में क्यों मिलाते हो? प्रयत्न केवल प्रभु प्राप्ति का करो ।

धाम-महिमा

(धामवास में सतत् सावधानी)

श्रीबाबामहाराज के सत्संग (७/५/ २००६) से संग्रहीत

प्रायः जब लोग सतत् सत्संग रूपी साधन से हट जाते हैं तो बहिर्मुखता बढ़ने के कारण देहाध्यासी होकर अपने ललाट पर तिलक लगाकर शीशे में चेहरा देखने लगते हैं कि तिलक में सुन्दरता आयी कि नहीं, भक्ति करने का लक्ष्य बदलकर शरीर-संसार की भक्ति करने लग जाते हैं| पातंजलि-योगसूत्र में लिखा है –

"स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः |"

(पातंजलि-योगसूत्र १/१४)

साधन का पहला चरण है – 'दीर्घकाल |' पातंजलि भगवान् कहते हैं कि सोच-समझ कर पाँव रखो | 'दीर्घकाल' का अर्थ है कि लाख जन्म भी लग जायें तो भी पाँव पीछे नहीं हटाओ | साधन का दूसरा चरण है – 'नैरन्तर्य |' जिससे सम्बंधित एक उदाहरण श्रीबाबामहाराज अपने जीवन की घटना से बताते हैं कि एक बार मेरे कोई मित्र मुझसे मिलने आये और बोले कि हम संस्कृत पढ़ना चाहते हैं तो मैंने कहा कि प्रेम सरोवर पर 'संस्कृत पाठशाला' है, वहाँ चले जाइये संस्कृत पढ़ने| वह वहाँ दो-चार साल तक पढ़ते रहे | इसके बाद मुझे भी संस्कृत पढ़ने की इच्छा हुई तो मैं भी वहाँ गया और पूर्व मध्यमा व शास्त्री की पढ़ाई किया, संस्कृत भाषा का सम्पूर्ण अध्य्यन मैंने कर लिया | जब मेरे मित्र मुझे वहाँ मिले तो मैंने पूछा कि आपका क्या हाल है तो वह बोले कि अभी मैं पंचसंधि रट रहा हूँ, अभी तक मुझे वह पूरी याद नहीं हुई | इसे साधन नहीं कहा जाता है | दस साल बीत गये लेकिन दस दिन का कोर्स पूरा नहीं हुआ, पढ़ाई करते-करते ही वह बीच में ब्रज-चौरासी कोस की परिक्रमा करने चले गये, जिसके कारण सब पढ़ाई विस्मृत हो गयी, परिक्रमा से लौटकर उन्होंने फिर याद किया, फिर बाहर कुछ दिनों के लिए किसी भोज में चले गये, फिर लौट आये और थोड़ा-सा रटे, फिर चले गये बड़ी परिक्रमा करने, उसके बाद फिर जोर लगाया; इस तरह उनके बारह-चौदह साल बीते परन्तु 'पंचसन्धि' ही पूरी नहीं हुई, कारण कि पढ़ाई में 'नैरन्तर्य' नहीं था | 'नैरन्तर्य' अर्थात् जो साधन निरंतर चलता रहे |

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः |
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ||

(श्रीगीताजी ६/१०)

भगवान् ने भी गीता में कहा कि साधन तो सतत्, दिन-रात चलना चाहिए, उसको साधन कहते हैं | जैसे कि रामायण में कहा गया है –

"जागत सोवत सरन तुम्हारी |"

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड – १३०)

जागते, सोते, सुषुप्ति – तीनों अवस्थाओं में जो चलता रहे, उसको साधन कहते हैं | ये नहीं कि एक घंटा पाठ कर लिया और भजन हो गया | इसको साधन या भजन नहीं कहते | कई जगह भगवान् ने गीता में इसे कहा है –

महात्मानस्तु मां पार्थ देवीं प्रकृतिमाश्रिताः |
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ||
सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः |
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ||

(श्रीगीताजी ९/१३,१४)

इन श्लोकों में 'नित्ययुक्ता' और 'सतत्' शब्द भगवान् ने इसीलिए जोर देकर कहे कि साधन उसको नहीं कहते कि एक घंटा, आधा घंटा कर लिया, थोड़ा-सा नियम मात्र कर लिया और सोचने लगे कि हमारा साधन हो गया | हम जैसे नासमझ लोग थोड़ी देर के जप और पाठ–पूजा को ही साधन समझते हैं | वस्तुतः साधन तो वह है, जो जब शुरू हो गया तो फिर बंद नहीं होगा, जागते-सोते, उठते-बैठते,खाते-पीते–हर समय चलता रहता है, उसका नाम साधन है, इसीलिये साधन का दूसरा चरण है – '**नैरन्तर्य|**' साधन का तीसरा चरण है – '**सत्कारासेवितो|**' 'सत्कार' का अर्थ है - श्रद्धा | श्रद्धा-

रुचि के साथ साधन में लगना चाहिए | श्रीबाबामहाराज शुरू में जब ब्रज में आये तो एक बार वृन्दावन में कलाधारी आश्रम पर गये क्योंकि भोजन पाने की व्यवस्था वृन्दावन में उस समय केवल उसी आश्रम में थी | उस आश्रम का यह नियम था कि या तो २ घंटे रसोई में सेवा करो अथवा २ घंटे कीर्तन करो | अधिकतर लोग वहाँ कीर्तन में बैठते थे क्योंकि उसमें मेहनत नहीं करनी पड़ती है | श्रीबाबामहाराज कीर्तन करने बैठ गये क्योंकि उनको हारमोनियम-ढोलक बजाने का अच्छा अभ्यास था लेकिन श्री बाबा महाराज ने देखा कि अधिकांश साधु कीर्तन में बैठ तो जाते थे परन्तु बीच में कोई बात करने लग जाता, कोई तम्बाकू मलने लगता और जब मंदिर का कोतवाल आ जाता तब सब साधु उसको दिखाने के लिए जोर-जोर से कीर्तन करने लग जाते थे और जब वह चला जाता तो वे साधु फिर से बात करने लग जाते, इधर-उधर की क्रिया करने लग जाते थे | इसको साधन नहीं कहते हैं क्योंकि उसमें साधन के प्रति सत्कार, श्रद्धा व रुचि नहीं है | करना पड़ रहा है इसलिए मज़बूरी में कर रहे हैं | जैसे - स्कूल में बच्चे प्रतीक्षा करते हैं कि कब छुट्टी की घंटी बजे और जैसे ही घंटी बजती है फिर ऐसे भागते हैं जैसे खूंटे से पशु छूटकर भागा हो | इसी प्रकार भजनाश्रम में भी एक घंटे कीर्तन करने का पैसा दिया जाता है, दो घंटे कीर्तन करने का कुछ अधिक दिया जाता है तो इस तरह के साधन में सत्कार नहीं है | जब सत्कार नहीं है तो उसे पातंजलि भगवान् ने साधन नहीं माना है | यह बड़ी सूक्ष्म बात है | चौथा साधन है - 'दृढ़भूमि'–दृढ़ता अर्थात् द्वन्द्वों का प्रभाव हमारे साधन पर न पड़े |

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत |
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप ||

(श्रीगीताजी ७/२७)

'द्वंद्व' साधन को नष्ट कर देते हैं, किसी भी प्रकार का द्वंद्व यदि चित्त में आ गया, चाहे वह राग सम्बन्धी द्वंद्व हो, चाहे द्वेष सम्बन्धी द्वंद्व हो, वह साधन को समाप्त कर देता है | चाहे तुम दिन-रात साधन में लगे रहो | कहीं किसी शरीर में राग हो गया या किसी भी विषय-वस्तु से राग हो गया भोजन आदि अन्य चीजों से तथा किसी से द्वेष हो गया तो इससे नुक्सान ही होता है | विश्वास में कमी होने के कारण लोग कहते हैं कि इतने दिन हो गये इस साधन को करते-करते, अब दूसरे मार्ग (साधन) को पकड़ो | कुछ लोग साधकों को सलाह देते हैं कि अरे ! इतने दिन हो गये तुम्हें कीर्तन करते हुए, कोई फायदा नहीं हुआ, इसलिए अब माला करो | माला कई दिन फेर ली तो किसी ने कहा कि अरे ! इतने दिन माला करने से कोई फायदा नहीं हुआ तो अब पाठ करो | पाठ से कोई लाभ नहीं हुआ तो फिर कहने लगे कि अब दूसरा साधन करो | इस प्रकार दृढ़ता न होने से उसे साधन नहीं माना गया | साधन के चार अंग माने गये हैं | अब ये देखना है कि यदि इस पैमाने पर हम चलते हैं तो ऐसी कौन-सी चीज है, जिसे हम चौबीस घंटे कर सकते हैं, निरन्तर कर सकते हैं, दृढ़ता से कर सकते हैं | धामनिष्ठ लोगों ने बताया कि धामवास सबसे सरल है, सबसे सुगम है | ऐसा क्यों? तो इसका उत्तर यह है कि नाम-संकीर्तन बहुत ही सरल-सहज-सरस साधन है किन्तु जब सो जाओगे तो ये रसमय साधन बंद हो जायेगा क्योंकि सोना तो पड़ेगा ही, परन्तु धाम के सम्बन्ध में तो धामनिष्ठ रसिक महापुरुषों ने कहा है – '**वृन्दावन में मंजुल मरिबो |**' यहाँ की मृत्यु भी मंगल है, यहाँ का सोना भी मंगल है, वह भी भजन है –

काहू के बल भजन को, काहू के आचार |
व्यास भरोसे कुँवरि के, सोवत पाँव पसार ||

ब्रज में मरना भी मंगल है, यहाँ सोना भी मंगल है, यहाँ सब कुछ मंगल है, यदि कोई यहाँ एकनिष्ठ होकर रहे | इसीलिए धामवास को सबसे सरल और श्रेष्ठ साधन बताया गया है | कुछ नहीं कर सकते तो यहाँ धाम में आकर मर ही जाओ |

इससे पहले कि संसार तुमको छोड़ दे, तुम संसार को छोड़ दो अर्थात् संसार को अपने मन से निकाल दो ।

गौ-महिमा

(सर्वश्रेयकारी 'गौ-आराधना')

श्रीबाबा महाराज के सत्संग 'गौ-महिमा' (१५/०७/२०१२) से संग्रहीत

वत्सला' शब्द गाय से ही बना है | 'वत्सला' का अर्थ है - बछड़ा वाली | गाय अपने तुरंत पैदा हुए बछड़े की गन्दगी को चाट-चाट कर दूर कर देती है | गाय कभी भी बछड़े के विकारों, उसकी गन्दगी से घृणा नहीं करती है | गाय का स्वभाव है कि वह अपने बछड़े के अवगुणों को नहीं देखती है | जब बछड़ा पैदा होता है, उसी समय गाय उसको चाटने लगती है, ऐसा संसार में कोई माँ नहीं करती है | चौरासी लाख योनियों में जितनी भी मातायें हैं, चाहे मनुष्य योनि की माँ है, वह भी अपने बच्चे के मल-मूत्र को मुख से, जीभ से, चाटकर साफ नहीं करेगी | अपनी सगी माँ भी बच्चे के मल-मूत्र का भक्षण नहीं करेगी परन्तु गाय अपने पैदा हुए बछड़े के शरीर की गंदगी को जीभ से चाटती है, अपने बछड़े से इतना प्यार करती है | बछड़े के विकार, अवगुण आदि सब गाय को अच्छे लगते हैं, इसीलिए वह जीभ से चाटकर अपने बछड़े की गंदगी को दूर करती है; ऐसी दयामयी माता संसार में न कोई थी, न है और न होगी, इसीलिए गाय के अपने बछड़े के प्रति प्रगाढ़ प्रेम के कारण ही 'वात्सल्य' शब्द बना | 'वत्सलायाः भावः वात्सल्यम्' – 'श्यञ्' प्रत्यय करके 'वात्सल्य' शब्द बनता है | वात्सल्य भाव केवल गाय में होता है और किसी में यदि यह गुण है तो उपमा के रूप में कहा जाता है, वस्तुतः इस शब्द की उत्पत्ति गाय से ही हुई है | अस्तु, सुरभि गाय ने शंकरजी को अपने शरीर में लीन कर लिया क्योंकि शिवजी ने सुरभि को माँ कहा था तो सुरभि ने कहा – "तुम मेरे पुत्र हो, अतः मैं तुम्हारे विकारों को अपने भीतर लीन कर लूँगी |" शिवजी सुरभि गाय के शरीर में लीन हो गये |

अनन्तर शिवजी की अनुपस्थिति से त्रिलोकी में हाहाकार मच गया | सभी देवताओं ने ब्राह्मणों को, महात्माओं को प्रसन्न किया और पूछा कि शंकरजी कहाँ हैं – **"कुत्र शंकरः? क्वा शंकरः?**" महात्माओं ने कहा – "**गोलोके शंकरः** |" शंकरजी गोलोक में हैं | देवताओं ने पूछा – "क्यों ?" महात्माजन बोले कि उनके शरीर में दाह उत्पन्न हो गया था, उस दाह के शमन हेतु उन्होंने भगवान् की शरण ग्रहण की, जैसे - भस्मासुर से बचने के लिए उन्होंने भगवान् का स्मरण किया तो भगवान् ने उन्हें भस्मासुर के संकट से बचाया था, त्रिपुरासुर से युद्ध करते समय शिवजी गिर पड़े थे, तब भगवान् स्वयं गये और उनके वाहन बनकर शिवजी को उठाया था तब शिवजी ने त्रिपुरासुर पर विजय प्राप्त की थी | इस तरह जब-जब शिवजी पर आपत्ति पड़ती है तो वह भगवान् की शरण में जाते हैं | इसीलिए देवताओं के पूछने पर महात्माओं ने बताया कि इस समय शिवजी गोलोक में चले गये हैं | तुमलोग भी गोलोक जाओ | तब सभी देवगण गोलोक गये | वहाँ पर अगणित दिव्य गायें थीं यथा – नंदा, सुमनसा, स्वरूपा, सुशीलका, कामिनी, नंदिनी, मेद्या, हिरण्यदा, धनदा, धर्मदा, नर्मदा, सकलप्रिया, वामनलम्बिका, दीर्घश्रृंगा (लम्बी सींग वाली), कृष्णा, सुपिच्छका (सुन्दर पूँछ वाली), तारा, तोयिका, शान्ता, दुरविशैया, सुनासा, मनोरमा, गौरा, गौरमुखी, हरिद्रावर्णा, नीलाशंखिनी, पंचवर्णिका, विनता, अभिनता, भिन्नवर्णा, सुपत्रिका, जया, अरूणाकुंडोगिनी, सुदति तथा चारुचम्पिका – ये सब गोलोक धाम की गायों के नाम हैं; इन गायों के बीच में सुरभि खड़ी थी, जिसके गर्भ में शिवजी थे, उसने शिवजी को अपने शरीर में लीन कर लिया था | देवताओं ने शिवजी की और सुरभि की स्तुति किया कि आपके बिना त्रिलोकी में शान्ति नहीं है | 'शंकर' शब्द शम से बना है, शंकर अर्थात् शांति करने वाला | वह शंकर भी हैं और प्रलयंकर भी हैं | अपने भक्तों के लिए वह शंकर हैं - 'शम' माने शांति करने वाले हैं और दुष्टों के लिए प्रलयंकर हैं | जब देवताओं ने सुरभि माता और शिवजी की स्तुति किया तो सुरभि ने एक बछड़े को जन्म दिया | उसका सारा अंग

लाल, मुख और पूँछ पीले थे, खुर और सींग सफेद थे | उस बछड़े का नाम नीलवृष था | देवताओं ने नील नामक बछड़े को देखा कि वही धर्म भी हैं, वही पंचमुख महादेव हैं | उनके दर्शन से वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है | समस्त ऋषियों व देवताओं ने उस नील वृषभ की स्तुति करना आरम्भ किया, वे बोले कि ये तो साक्षात् शंकर भी हैं और सुरभि के पुत्र भी हैं, इसलिए सभी ने स्तुति करते हुए कहा –

वृषस्त्वं भगवान् देव यस्तुभ्यं कुरुते त्वघम् |
वृषलः स तु विज्ञेयो रौरवादिषु पच्यते ||
पदा स्पृष्टः स तु नरो नरकादिषु यातनाः |
सेवते पापनिचयैर्निगाढप्रायबन्धनैः ||
क्षुत्क्षामञ्च तृषाक्रान्तं महाभारसमन्वितम् |
निर्दया ये प्रशोष्यन्ति मतिस्तेषां न शाश्वती ||

आप ही धर्म हैं, आपको नमस्कार है | जो आपका अपमान करता है उसको वृषल (अधमशूद्र) कहा गया है, उसको अवश्य रौरव आदि नरकों में यातनायें मिलती हैं, जो आपको पाँव से छूता है, मारता है | (गाय, बैल-बछड़ो को पाँव से मारना नहीं चाहिए) गौवंश को पाँव से मारने वाला निश्चित ही नरक को प्राप्त होता है और पापों के समूह से वह बँध जाता है | यातना भोगता है, वह कभी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता | सभी ऋषियों ने इस प्रकार उस नील वृषभ की स्तुति की और महेश्वर शंकर को वरदान दिया कि मरे हुए प्राणी के ग्यारहवें दिन एक वृषभ के वाम अंग में चक्र और दक्षिण भाग में त्रिशूल का चिन्ह लगाकर छोड़ दिया जाता है तो देवता उसकी रक्षा करेंगे | इस तरह से भगवान शंकर का कष्ट दूर हुआ |

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कहा गया है – गौ-आराधन से सब कुछ मिलता है | श्रीकृष्ण-प्राप्ति तक हो जाती है | गायों के शरीर को जो खुजलाता है तो इतने से ही मनुष्य के पाप जल जाते हैं | इसलिए गायों को सहलाना चाहिए | इससे पाप नष्ट होता है | गौ-ग्रास देने से पुण्य की प्राप्ति होती है | **"गवां कण्डूयनान्मर्त्यः सर्वं पापं व्यपोहति |"** पाप दूर करने का एक अत्यन्त सरल उपाय है, गायों को खुजलाओ और उन्हें जलाशय पर ले जाकर पानी पिलाओ, ऐसा करने वाले मनुष्य को स्वर्ग की प्राप्ति होती है | अश्वमेध यज्ञ करने की आवश्कता नहीं है | केवल गायों को पानी पिलाओ, जो व्यक्ति गायों के लिए गोचर भूमि की व्यवस्था करता है –

"तासां प्रचारभूमिं तु कृत्वा प्राप्नोति मानवः |
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति असंशयम् ||"

वह निश्चित ही अश्वमेध यज्ञ के फल की प्राप्ति करता है | गायों को नमक खिलाने से भी बड़ा पुण्य मिलता है | श्री बाबा महाराज अपने बचपन की घटना को बताते हुए कहते हैं कि बाल्यावस्था में मैं देखता था कि धनी लोग सेंधा नमक का पूरा लौंदा (खंड) गायों के लिए रख देते थे, उसे गायें चाटा करती थीं | गायों को नमक खिलाने से मनुष्य को सौभाग्य की प्राप्ति होती है | यदि कभी गाय को कोई जान से मारने जा रहा है तो उस व्यक्ति से गाय को खरीद कर अगर छुड़ा लो तो गोमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है | ये सब बातें विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कही गयी हैं | गाय सर्वदेवमयी है, सर्वतीर्थमयी है | कथाओं में, भक्तों के चरित्रों में भी यह बात कही गयी है | जिस समय ब्रज में गोपालजी गौचारण करके गायों व ग्वालवालों के साथ लौटते हैं तो उस समय बहुत ब्रज-रज उड़ती है, तो उस समय लाखों गायों से समावृत राम-श्याम दोनों भैयायों की अनुपम, अलौकिक मनमोहक छवि होती है, जिस माधुर्यमय रूप का रसपान ब्रजगोपियाँ करती हैं, उस संध्याकाल को गौधूलिबेला कहते हैं | मानमंदिर की माताजी गौशाला में भी जब गोधूलि बेला में गायें अपने निवास-स्थल पर एक साथ भोजन-पानी के लिए आती हैं तो इतनी धूल उड़ती है कि ऊपर रत्नगिरि पर्वत तक धूल पहुँच जाती है, उस समय द्वापरकालीन कृष्णलीला जैसा दृश्य दिखाई देता है | गायों की धूल में श्रीकृष्ण आते हैं |

|| ये सारा संसार तो थोड़ी देर में छूटेगा ही, इसलिए तू खुद ही इसे छोड़ दे और दिन-रात भगवान् का संकीर्तन कर ||

"द टाइम्स ऑफ कनाडा" न्यूज-चैनल में साध्वी मुरलिकाजी का साक्षात्कार

(वार्तालाप के प्रमुख अंश)

मानमंदिर की यशस्विनी प्रचारिका साध्वी मुरलिका जी इन दिनों गौरवशालिनी भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति के प्रचार हेतु अमेरिका व कनाडा के दौरे पर हैं | कनाडा में 'द टाइम्स ऑफ़ कनाडा' टी.वी.चैनल के द्वारा उन्हें अपने कार्यालय में निमंत्रित करके उनका इंटरव्यू लिया गया | यहाँ प्रस्तुत है उस इंटरव्यू की संक्षिप्त जानकारी दी जा रही है –

प्रश्नकर्ता – "आज हमारे साथ ब्रजबालिका साध्वी मुरलिकाशर्माजी हैं | मुरलिका जी ! 'द टाइम्स ऑफ़ कनाडा' के कार्यालय में आपका बहुत-बहुत स्वागत है | भारत को देवताओं, ऋषि-मुनियों की भूमि कहा गया है, यहाँ आर्य वैदिक संस्कृति के सबसे महान और प्राचीनतम धर्मग्रन्थ लिखे गये | विश्व के सभी बड़े धर्म भारत से ही प्रारम्भ हुए | हमारी संस्कृति दुनिया की सबसे पुरातन और महानतम संस्कृति है | प्राचीनकाल से ही भारत के प्रचारक सारी दुनिया में जाकर धर्म का प्रचार करते रहे हैं | मुरलिकाजी ! मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि आपके कनाडा-आगमन का उद्देश्य क्या है?"

मुरलिकाजी – "हम लोग पिछले चार महीने से उत्तरी अमेरिका में भारत की आध्यात्मिक संस्कृति और पर्यावरण की सुरक्षा से सम्बन्धित प्रचार हेतु भ्रमण कर रहे हैं | पिछले कई वर्षों से प्रतिवर्ष हमलोग यहाँ आ रहे हैं | सबसे पहली बात तो यह है कि भारतीय मूल के जो लोग कनाडा में रह रहे हैं, उनके लिए धार्मिक और सांस्कृतिक कार्यक्रम, जो उन्हें निरंतर धर्म और भारतीय संस्कारों से जोड़े हुए हैं, उनका यहाँ होना बहुत आवश्यक है | दूसरी चीज यह है कि हम लोग श्रीमानमंदिर, बरसाना धाम ब्रजभूमि से आये हैं | हमारे पूज्य गुरुदेव श्रीश्रीरमेशबाबामहाराज की प्रेरणा व उनके निर्देशन में हम लोग निःस्वार्थ भाव से भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक संस्कारों को अमेरिका और कनाडा जैसे पश्चिमी देशों में स्थान-स्थान पर लोगों को वितरण कर रहे हैं, न कि बेच रहे हैं, जैसा कि वर्तमान समय में एक बहुत बड़ी समस्या बन गयी है कि धर्म को लोग व्यवसाय की दृष्टि से देखने लगे हैं, जो कि हमारे सनातन धर्म के लिए एक बहुत बड़ी हानि है, धार्मिक लोगों के लिए भी यह एक बहुत बड़ी क्षति है | ऐसे समय में हमारे पूज्य गुरुदेव श्रीबाबामहाराज के द्वारा बहुत से उत्तम प्रचारक तैयार किये गये हैं, जो सारी दुनिया में भ्रमण करके सारहीन आधुनिक पश्चिमी सभ्यता के गहन अंधकार में निमग्न लोगों को भारत की गरिमामयी ब्रज-संस्कृति का प्रकाश देकर उन्हें जागरूक कर रहे हैं |"

प्रश्नकर्ता – "जब भी किसी धर्म-प्रचारक की बात चलती है तो हमारे समक्ष एक प्रौढ़ व्यक्ति की छवि आती है | आप इतनी छोटी-सी आयु में धर्म-प्रचार के कार्यों में कैसे लग गईं ? क्या आप मुझे अपने बारे में बतायेंगी कि आपका बचपन कैसा था, आपका परिचय क्या है ? आपके मन में धर्म-प्रचार करने की उत्सुकता का कब से, किस प्रकार शुभारम्भ हुआ, विशेष रूप से आपके जीवन में किसका प्रभाव पड़ा ?"

मुरलिकाजी – "यह तो स्वाभाविक ही है क्योंकि हमारा घर बरसाना, ब्रजभूमि में है, हमलोग जन्मजात ब्रजवासी हैं | मेरे ताऊजी डॉ. श्रीरामजीलालशास्त्रीजी तथा मेरे छोटे भाई राधिकेशजी भी मेरे साथ उत्तरी अमेरिका के इस प्रचाराभियान में हैं | मेरा सम्पूर्ण परिवार ही अध्यात्म को समर्पित है | प्रारम्भ से ही हम लोग भक्तिमार्ग पर चल रहे हैं | मेरे पूज्य ताऊजी डॉ. श्रीरामजीलालशास्त्रीजी देश-विदेश में जनजागृति हेतु निष्काम भाव से १५०० से अधिक कथाओं का कार्यक्रम कर चुके हैं | विगत २० वर्षों से वह अमेरिका आ रहे हैं | इस प्रकार एक तो मुझे घर से ही आध्यात्मिक वातावरण मिला, कुछ पूर्वजन्म के भी संस्कार होते हैं परन्तु उससे भी अधिक जो मैं अनुभव करती हूँ, वह है – 'एक दिव्य महापुरुष की कृपा |' मेरे जन्म से पूर्व ही मेरा सम्पूर्ण घर-परिवार पूज्य गुरुदेव श्रीरमेशबाबामहाराज के प्रति समर्पित रहा है | पिछले ६५ वर्षों से वह भगवान्

कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति श्रीराधारानी की लीलाभूमि बरसाना, ब्रजभूमि में अखण्डवास कर रहे हैं, मेरा जन्म ही उनकी सत्संगमयी सन्निधि में हुआ, बचपन से ही मुझे भक्तिमय वातावरण मिला | दस वर्ष की अवस्था से मैंने कथा कहना आरम्भ किया क्योंकि प्रारम्भ से ही घर में और अपने चारों तरफ मुझे 'कथा-कीर्तन' का ही परम पवित्र वातावरण मिलता रहा | इस समय आधुनिक पतनशील जगत में युवाओं को अध्यात्म की ओर खींचने की बहुत अधिक आवश्यकता है | अगर मेरे जैसी उम्र की युवा पीढ़ी धर्म-प्रचार करेगी तो अपने समवयस्क लोगों को देखकर युवकजनों को भी एक सत्प्रेरणा मिलती है और विशेष प्रभाव पड़ता है कि वस्तुतः धर्म केवल उनके लिए नहीं है जिनके बाल सफेद हो गये हैं या जिनकी आयु अब समाप्ति की ओर है | प्रह्लादजी के अनुसार तो-

कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह। दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥

(श्रीमद्भागवत ७/६/१)

मानव-जीवन अध्यात्म के लिए ही मिला है, बचपन से ही यदि कोई इससे जुड़ जाता है तो उसने जीवन की बहुत बड़ी वास्तविक उपलब्धि हासिल कर ली है |"

प्रश्नकर्ता – "युवावस्था में सभी के मन में यह कामना होती है कि हम नई-नई जगह घूमने जाएँ, नये-नये वस्त्र पहनें, नवीन चीजें जैसे फिल्म आदि देखें, आप इस अवस्था में कैसा अनुभव करती हैं, क्या दूसरे लोगों की तरह आपके मन में ऐसी इच्छा नहीं होती है कि इधर-उधर भ्रमण करें तथा भौतिकतावादी जगत की वस्तुओं की ओर भी ध्यान दें |"

मुरलिका जी – "नहीं....., गुरुदेव की ऐसी कृपा है और बचपन से ही हम लोगों को ऐसा प्रशिक्षण, इस प्रकार का संरक्षण मिला है कि भौतिक जगत के मायिक प्रलोभनों से हम लोग दूर रहते हैं | मैंने स्वयं ८ वीं कक्षा तक नियमित रूप से शिक्षा प्राप्त की है | अंग्रेजों द्वारा भारत के दिव्य वैदिक ज्ञान को समूल नष्ट कर भारतीयों को ओछी अंग्रेजियत का गुलाम बनाये रखने वाली इस अनैतिक, धर्मविहीन और भ्रष्ट शिक्षा के प्रदूषण को अनुभव कर श्रीगुरुदेव के द्वारा यथार्थ रूप से मनुष्य को ज्ञानसम्पन्न बनाने वाले वैदिक शास्त्रों का अध्ययन किया ताकि बाहरी दूषित संस्कार प्रभावित न कर सकें | हमारे मानमन्दिर सेवा संस्थान में जितनी भी कन्यायें हैं, चाहे वे आठ-नौ वर्ष की हों अथवा अठारह वर्ष की हों, भौतिक संस्कारों से, बाहरी प्रलोभनों से वे सब इतना बची हुई हैं कि कभी भी कोई वहाँ जाकर स्वयं देख सकता है | कई बार बाहर के लोग वहाँ आकर उन साध्वियों को खाद्य-सामग्री, धन, रुपये आदि देने का प्रयास करते हैं परन्तु वे दिव्य बालिकाएँ सांसारिक प्रलोभनों को लेना तो बहुत दूर है, उनका स्पर्श व स्मरण भी नहीं करती हैं |

क्योंकि उन्हें श्रीबाबामहाराज द्वारा नित्य सत्संग व आराधनामय ऐसा दिव्य वातावरण संप्राप्त है कि वहाँ मायिक विकारों का प्रवेश ही नहीं है; उसी विशुद्ध भक्तिमय वातावरण में हमलोग भी पढ़े-लिखे हैं | श्रीमद्भागवतजी के दिव्य सिद्धान्तों को हमने अपने गुरुदेव के जीवन में व्यवहारिक रूप से देखा है, जिनको सब सुविधाएँ उपलब्ध होने पर भी केवल एक कौपीन में रहने वाला परमहंसमय जीवन है; ऐसे अलौकिक आदर्श हम लोगों के सामने हैं और वे आदर्श ही हम लोगों को बाहर के आकर्षणों, इधर-उधर घूमने जैसी अन्य कई भौतिक कामनाओं से बचाते हैं |"

प्रश्नकर्ता – "मानमन्दिर, बरसाना ब्रजभूमि में स्थित है, वहाँ क्या-क्या कार्यक्रम चल रहे हैं और मैंने इंटरनेट पर सर्च के द्वारा पता किया कि वहाँ एक बहुत विशाल गौशाला है तो गौ-संरक्षण, गौसेवा हेतु वहाँ क्या-क्या कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं?"

मुरलिकाजी – "हमारे पूज्य गुरुदेव का सम्पूर्ण जीवन श्रीराधामाधव की अवतरितलीलाभूमि परमपावनी ब्रज-वसुंधरा की दिव्य सेवा हेतु ही समर्पित रहा है | वस्तुतः ब्रजभूमि की रक्षा, सेवा और सम्वर्द्धन करना किसी एक व्यक्ति का ही कर्तव्य नहीं है क्योंकि वैकुण्ठ से भी श्रेष्ठ यह धरा किसी की व्यक्तिगत भूमि नहीं है अपितु ब्रज तो सम्पूर्ण विश्व की भक्ति का केंद्र है और सरकारी आंकड़ों के हिसाब से प्रतिवर्ष दुनिया के १० करोड़ लोग वहाँ दर्शन के लिए आते हैं | ब्रज हमारे देश की एक बहुत बड़ी विरासत, अत्यंत

महत्वपूर्ण धरोहर है, जिसके प्रति निश्चित रूप से देशवासियों के साथ-साथ संतों का भी ध्यान होना चाहिए किन्तु दुर्भाग्य है अथवा यह हमारे भावों की नगण्यता है कि जो होना चाहिए वैसा दृष्टिकोण ब्रजभूमि के प्रति लोगों का नहीं है | इसके अतिरिक्त ब्रज तथा देश की जो बहुमूल्य विरासत है - गौवंश, जिसके सम्बन्ध में हमारे संस्थान से गौ-सेवा का एक बहुत बड़ा कार्यक्रम चल रहा है, वह वर्तमान में विश्व का गौरव है | पूज्य गुरुदेव की माताजी की स्मृति में 'श्रीमाताजी गौशाला' की स्थापना की गयी है | सन् २००७ जुलाई माह में इसका शुभारम्भ हुआ था और १०-११ वर्ष में ही इसने देश की अत्यंत विशाल गौशाला का रूप ले लिया है, जिसमें इस समय ५५ हजार गौवंश का पालन-पोषण और संरक्षण किया जा रहा है | सबसे विशेष बात यह है कि हमारे महाराजश्री द्वारा संकल्पित ब्रजसेवा के सभी कार्य-प्रकल्प पूर्णतया निःस्वार्थ भाव से किये जाते हैं | श्रीमाता जी गौशाला में जितनी भी गायें हैं, उन्हें कसाईघरों के चंगुल से बचाया गया है, वृद्धावस्था के कारण दूध देने में असमर्थ, समाज द्वारा उपेक्षित, बीमार और विकलांग गौवंश की वहाँ मातृवत् सेवा की जाती है, दूध के लोभ से गौ-सेवा नहीं की जाती है | गाय को हमारी अनादि-वैदिक संस्कृति में, वैदिक ग्रन्थों में 'सनातनधर्म का मूल स्तम्भ' माना गया है | धार्मिक जगत् का मूल है -वेद, 'वेदों' का यदि अध्ययन किया जाए तो उनमें १३७ स्थानों पर गौमाता के लिए 'अघ्न्या' शब्द प्रयुक्त किया गया है | 'अघ्न्या' का अर्थ है कि गाय किसी भी स्थिति में मारने योग्य नहीं है |

प्रश्नकर्ता – भारतीय परम्परा की बात चली है तो इस देश में नारी का बहुत अधिक सम्मान किया जाता है, वैदिक शास्त्रों में नारी के लिए कहा गया है – 'मातृ देवो भव' इसीलिए भारत में सबसे पहले माता को ही प्रणाम किया जाता है लेकिन आज भारत में नारी-समाज का मातृवत् सम्मान नहीं रह गया है और आप स्वयं एक नारी हैं, इसके बारे में आपके क्या विचार हैं ?

मुरलिकाजी – देखिए, हमारे देश में प्रायः जितनी भी क्षतियाँ हुई हैं, उसका मूल कारण यह है कि विश्व में भारत ही एकमात्र ऐसा देश है जिसने सबसे अधिक पराधीनता सही है, लगभग दो हजार वर्षों तक गुलामी सही है | यहाँ विभिन्न देशों के दुराचारी-व्यभिचारी, क्रूर, बर्बर, भ्रष्ट और लोभी-कुटिल लोगों ने लम्बे समय तक शासन किया, जिनके दुष्प्रभाव से हमारी भारतीय शिक्षा प्रणाली भी विकृत हो गई | जिन घरों में खाने को पर्याप्त भोजन भी उपलब्ध नहीं है, वहां भी आपको मनोरंजन के लिए डिश-ऐंटीना, केबल-कनेक्शन दिखाई पड़ेगा | माता-पिता, दादा-दादी, बच्चों आदि की तीन पीढ़ियाँ एक साथ बैठकर टेलीविजन पर कामुक फिल्मी गानों के कार्यक्रम चित्रहार देखते हैं, अश्लीलता और हिंसा से परिपूर्ण फ़िल्में देखा करते हैं, उससे उनके चित्त और चरित्र पर क्या प्रभाव पड़ेगा? जहां हमारी संस्कृति कहती है – **"वृत्तं यत्नेन संरक्षेत् वित्तमेति च याति च |"** अर्थात् धन चला गया तो आ सकता है किन्तु चरित्र यदि चला गया तो वापस नहीं आयेगा | वर्तमान में संस्कारहीन माता-पिता ही बच्चों का चरित्र बिगाड़ रहे हैं | जो देश अहिंसावादी और चरित्रवान था, उसमें इतनी अधिक हिंसा और कामुकता टेलीविजन और इंटरनेट पर दिखाई जायेगी तो २० वर्ष की उम्र होने तक वह बच्चा निश्चित रूप से बलात्कारी और आतंकवादी बनेगा | यूरोप के महान कहे जाने वाले प्राचीन दार्शनिक चाहे वे सुकरात हों या उनके शिष्य प्लेटो हों, उन्होंने यह पूर्णतया अनुचित सिद्धांत प्रतिपादित किया कि स्त्रियों में आत्मा नहीं होती है, वह तो केवल एक भोग की वस्तु है, जिस प्रकार मेज-कुर्सी जब तक नई है तब तक उससे काम लिया जाता है और पुरानी पड़ने पर उसे फेंक दिया जाता है, इसी प्रकार यूरोप अथवा पश्चिमी सभ्यता-संस्कृति के जनक इन दार्शनिकों ने नारी में आत्मा का अस्तित्व ही नहीं स्वीकार किया, उसे भोग की वस्तु के रूप में प्रचारित किया, जब चाहे तब उससे भोग करो और भोग के अनुकूल न होने पर उसे फेंक दो | अंग्रेज लोग ऐसी संस्कारविहीन यूरोपियन-पाश्चात्य सभ्यता को कॉनवेंट स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में शिक्षा व्यवस्था के नाम पर हमारे ऊपर थोप गये, इसी दूषित पाश्चात्य सभ्यता और शिक्षा का प्रभाव हमारे देश में अभी तक है | जबकि हमारी संस्कृति है –

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता | जहां नारी की पूजा होती है, वहां देवता निवास करते हैं | हमारे सनातन धर्म में स्त्री को देवी रूप माना गया है, ब्रह्म रूप माना गया है जैसा दुनिया के किसी अन्य धर्म और संस्कृति में नहीं माना गया | हम लोग नारी की पूजा करते ही हैं | वास्तव में शिक्षा की विकृति के कारण ही ये सब दुष्प्रभाव देश में हैं |

प्रश्नकर्ता – "इस समस्या का हल क्या है?"

मुरलिकाजी – "इस समस्या का हल यही है कि हमें अपने बच्चों को शिक्षा के साथ-साथ आध्यात्मिक ज्ञान (भक्तिमयी शिक्षा) के संस्कार भी अवश्य प्रदान करने चाहिए | इसलिए शिक्षा के साथ-साथ हमें अध्यात्म को अवश्य जोड़ना होगा | अध्यात्म क्या है? अधि माने भीतर और आत्म का अर्थ है - स्वयं को देखो | 'आत्मनिरीक्षण' का नाम ही अध्यात्म है | पहले स्वयं को पहचानो कि जीवन किसलिए मिला है, क्या इन्हीं सब विनाशकारी कार्यों के लिए जीवन मिला है? भक्तिमयी शिक्षा से निश्चित है कि चरित्र भी स्वच्छ होगा, मानसिकताएँ भी शुद्ध होंगी, विचारधाराएँ भी निर्मल होंगी तथा फिर प्रकल्प भी स्वच्छ होंगे |"

प्रश्नकर्ता – "विकृतियों को देखकर जो लोग धार्मिक कार्य करना भी चाहते हैं, धर्म का साथ देना भी चाहते हैं तो फिर धीरे-धीरे उससे पृथक हो जाते हैं और हो रहे हैं | जब साधु-संतों पर ही विश्वास नहीं रहा तो फिर उनकी शिक्षा का अनुसरण कौन करेगा?"

मुरलिकाजी – "आपने बिल्कुल ठीक कहा है, धर्म का यह स्वरूप जो हम लोगों ने विकृत किया है, इसमें बहुत सावधानी की आवश्यकता है क्योंकि इसमें दिखाई पड़ता है धर्म का ध्वज परन्तु इस धर्म की ध्वजा के नीचे धर्म की एक बहुत बड़ी क्षति हो रही है | प्रतिष्ठित प्रचारकों, वक्ताओं और सम्मानित धर्माचार्यों के द्वारा यह निश्चित ही धर्म की एक बहुत बड़ी क्षति हो रही है | ऐसा इसलिए है क्योंकि हम लोगों का जीवन स्वार्थ परायण हो गया है, धन को ही हम लोग प्राथमिकता और महत्त्व देने लग गये, बाकी जो धार्मिक कार्य हैं, वे सब पीछे हो गये | इसको श्रीमद्भागवत में 'कैतव' अर्थात् कपटयुक्त भक्ति कहा गया है | आजकल संसार में कुछ ऐसे कालनेमि भी घूम रहे हैं | इस पतनोन्मुख दशा को सुधारने का एक महत्वपूर्ण उपाय यही है कि अच्छे अध्यात्म प्रचारकों को तैयार किया जाये जो संसार के सामने वास्तविकता को उचित रूप से प्रस्तुत करें, लोगों को सावधान कर सकें, जागरूक कर सकें और पूज्य श्री गुरुदेव श्रीबाबामहाराज के मार्गदर्शन में उसी प्रयास में हम लोग जुड़े हुए हैं, यथासम्भव अपनी सामर्थ्यानुसार ठाकुर जी की कृपा से अच्छे से अच्छा कार्य करने का प्रयत्न कर रहे हैं |"

प्रश्नकर्ता – "जब भी आप धर्म के कार्यों से जुड़ना चाहते हैं तो मुझे लगता है जैसा कि साध्वी मुरलिका जी ने कहा कि अध्ययन करें, परीक्षण करें कि हमें किस धर्मप्रचारक का अनुगमन करना है और किसका नहीं करना है | इस बात की जांच करें कि किसी भी धर्म का प्रचारक, वक्ता अथवा धर्मगुरु जो कुछ कह रहा है, क्या वास्तव में वह स्वयं भी उस उच्च आदर्श का पालन कर रहा है या नहीं और यदि पालन कर भी रहा है तो कितनी मात्रा में अपने सिखाएं सिद्धांतों का पालन करता है, और कहाँ करता है ? मुरलिकाजी, अंत में आप हमारे 'टाइम्स ऑफ़ कनाडा' के दर्शकों को क्या संदेश देना चाहेंगी ? इसके साथ ही मान मन्दिर के बारे में आप हमें अवगत कराएं जिससे कि यदि लोग बरसाना जाना चाहें तो वहां कैसे पहुंच सकते हैं, वहां उनके आवास और सत्संग का लाभ उठाने के लिए क्या व्यवस्था है, इस सम्बन्ध में वहां का क्या कार्यक्रम है ?"

मुरलिकाजी – "सबसे पहले तो मैं सभी दर्शकों को यही कहना चाहूंगी कि मान मन्दिर सेवा संस्थान, बरसाना में आप सभी का हार्दिक स्वागत है | आप लोग कभी भी समय निकाल कर वहां आ सकते हैं | इस समय भारतवर्ष के गौरव के रूप में वहां श्रीमाताजी गौशाला विद्यमान है, वह निश्चित ही अत्यधिक दर्शनीय स्थल है, आप उसका दर्शन कर सकते हैं | जो भी श्रद्धालुजन बरसाना आना चाहें, वे अवश्य आयें, उनका श्रीजी के धाम में हार्दिकसुस्वागत है, वहां आवास की भी उत्तम व्यवस्था है | इसलिए एक बार अवश्य ही आप वहां पधारें, धन्यवाद |"

तप किया, दान दिया, यज्ञ किया, योग किया, सदाचार किया परन्तु भगवान् की आराधना के बिना सब शून्य है ।

Exclusive Faith

(Selected from shri Ramesh Baba maharaj's lecture book 'Saargrahita')

Ananyāś cintayanto māṁ ye janāḥ paryupāsate
teṣāṁ nityābhiyuktānāṁ
yoga-kṣemaṁ vahāmy aham
(BG 9.22)

Bhagavān said in Bhagawad-Gita, 'You should remember and meditate on me exclusively with devotion and I will maintain and protect you always.' Mahabharata is nothing but the evidence of this very shloka. Krishna protected the Pandavas in the most abominable and controversial situtaions. The lives of Pandavas are the proof of this shloka. To cite a couple of examples- When Bhishma took a vow to kill Pandavas with just five arrows, Krishna protected them. When Karna aimed Narayana-astra towards Pandavas then He protected them. When Bhima killed Duryodhna with treachery, Lord Balrama became very angry and ran after Bhima to kill him. Then it was Shri Krishna who protected Bhima. Uttara's child in her womb was protected by Him from the heat of Aswatthama's Brahma-astra.

Like this many times and at many places Shri Krishna protected and maintained Pandavas. Why did He do so? Because they were exclusively absorbed in His rememebrance and such an uninterrupted and unflinching faith is exclusive faith.

केवल 'विशुद्ध भक्ति-प्राप्ति' का ही परम लक्ष्य बनाकर निष्काम भाव से 'कथा-कीर्तन' के कहने-सुनने वाले संसार के परमकल्याणकारी अर्थात् सबसे बड़े 'दाता' हैं |

* गौ-सेवकों की जिज्ञासा *
श्री माताजी गौशाला का बैंक
खाता दिया जा रहा है :-
SHRI MATAJI GAUSHALA
915010000494364